1/87

सोमसी

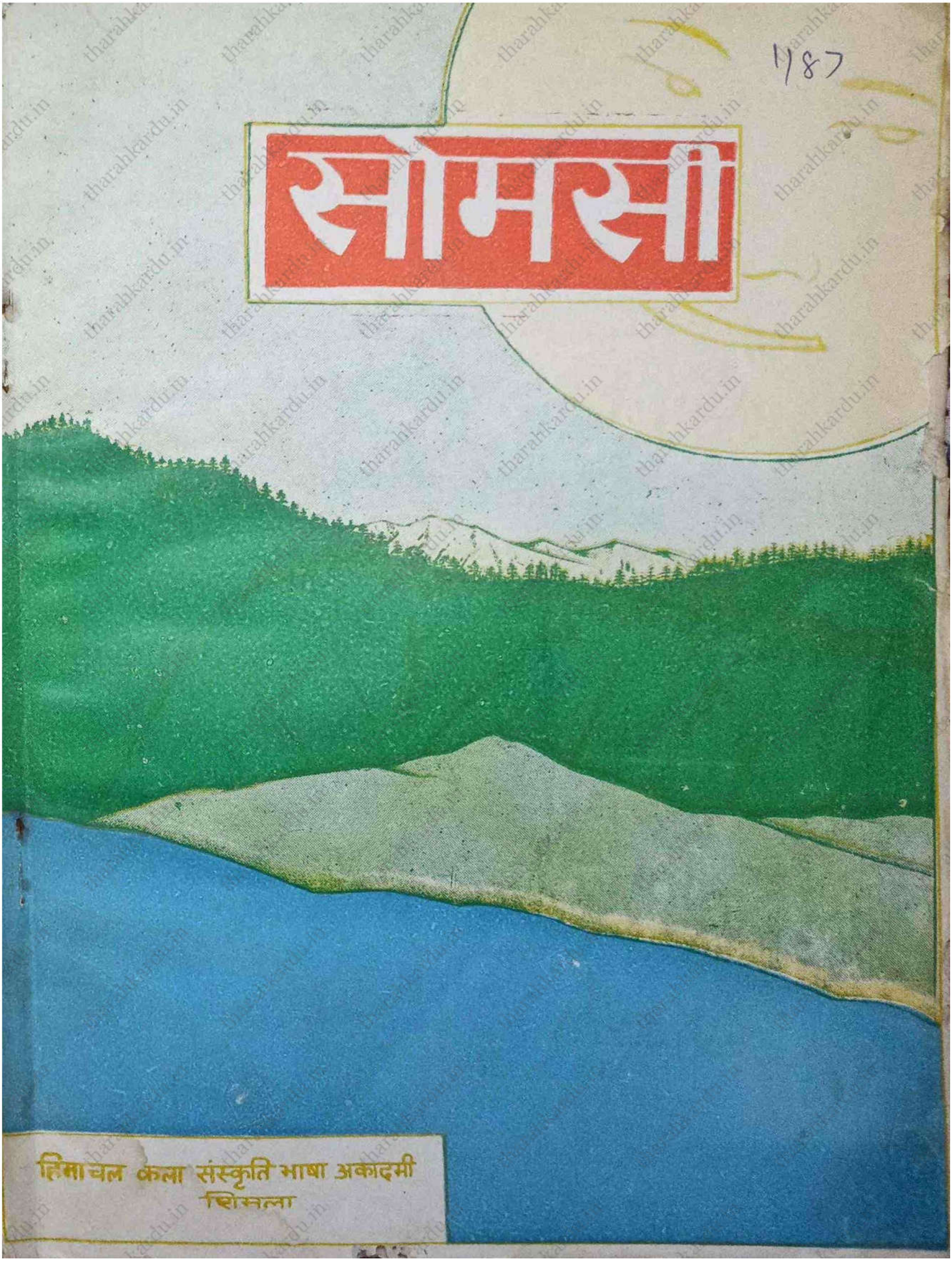

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी
शिमला

tharahkardu.in

सोमसी

कला, संस्कृति और भाषा की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 13 जनवरी, 1987 अंक 1

सम्पादक डॉ॰ बंशीराम शर्मा सहायक रमेश जसरोटिया निर्मल कौशल आवरण ओम सुजानपुरी	**47**	जनवरी, अप्रैल, जुलाई व अक्तूबर में प्रकाश्य लेखक द्वारा दिए गए तथ्यों तथा विचारों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं ।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 12-00 रुपये एक प्रति : 3-00 रुपये

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी
क्लिफ़ एण्ड एस्टेट शिमला-171 001

सोमसी/जनवरी 1987

इस अंक में

पृष्ठ	लेख	लेखक
1	यशपाल की कहानियों में हिमाचली जन-जीवन की झलकियां	डॉ० सुशील कुमार फुल्ल
15	सिरमौर में विवाह संस्कार	डॉ० खुशीराम गौतम
24	मण्डियाली में प्रकाशित पद्यसाहित्य	डॉ० नीलमणि उपाध्याय
30	हिम संस्कृति	श्यामलाल
36	प्रसिद्ध शक्तिपीठ : श्री नैनादेवी जी	डॉ० प्रत्यूष गुलेरी
39	हिमाचल में पूजित गूग्गा ज़हर पीर	डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा
52	यशपाल के उपन्यास 'झूठा सच्च' में	डॉ० ओमप्रकाश सारस्वत
62	करसोग क्षेत्र का माहूंनाग	हेमप्रभा शर्मा
66	कांगड़ा घाटी का एक अद्‌भुत तीर्थ	रमेश चन्द मस्ताना
70	अर्की जनपद का लोक प्रिय मेला	शंकर लाल शर्मा
75	हिमाचल प्रदेश का हिन्दी उपन्यास : साहित्य : एक परिशीलन	दिनेश धर्मपाल
84	कांगड़ा घाटी से मणिमहेश यात्रा	रत्न लाल चौधरी एम. ए.
87	पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम द्वारा रचित साहित्य	रत्न चन्द शर्मा

सम्पादकीय

हिमाचल प्रदेश में विविध बोलियों के सर्वेक्षण का कार्य आरम्भ है। आधुनिक दृश्य तथा श्रव्य कला आकाशवाणी–दूरदर्शन के प्रभाववश प्राचीन शब्दों का लोप होता जा रहा है। आंचलिक शब्दों के संग्रह की नितान्त आवश्यकता है। दूरवर्ती क्षेत्रों में व्यवहृत तत्सम, तद्भव, देशज तथा विदेशज शब्दों को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है। व्युत्पत्ति, मुहावरों, लोकोक्ति पद रचना प्रयोग जो भी उपलब्ध हो उसे अंकित करने की योजना है।

शब्दकोश में वर्तनी में सरलता अपनाई जा रही है। वर्ग के चतुर्थ वर्ण का उच्चारण तान के कारण भिन्न-भिन्न है। घर का उच्चारण विविध क्षेत्रों में क्हर, ग्हर, कर जैसा श्रुतिगम्य है। बलाघात के कारण शब्दों के कई रूप हैं। स्वर संस्कार भी विविध रूप में है। घर का उच्चारण घोर, घौर, घउर, घऊर, ग्होर, क्होर आदि में ओ तथा औ के अनेक रूप हैं। ध्वन्यंकन की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण विषय है जिसका निरूपण शब्दकोश की भूमिका में किया जाएगा। शब्दकोश में जो भी ध्वनि व्यवहृत है उसका मुद्रण की दृष्टि से यथोचित रूपदर्शन कराने की योजना है। पाणी, पानी, चीश आदि पर्याय शब्दों का उल्लेख भी यथास्थान देने की योजना है। प्राचीनता तथा आधुनिकता के रूप में शब्द संग्रह महत्वपूर्ण होगा। इच्छा विशेष में आजकल मूड शब्द का प्रयोग किया जा रहा है। इसके लिए पहाड़ी में गों शब्द प्रचलित है। स्टैप तथा कदम के लिए पहाड़ी में गैं शब्द है। कदम बढ़ाना के लिए गैं पुटणा शब्द है। ऐसे शब्दों का संग्रह, प्रयोग तथा पर्याय शब्दकोश में देने का प्रयत्न किया जा रहा है।

इस महान योगदान के लिए प्रत्येक क्षेत्र में अधिकारी, विद्वान, कर्मिष्ठ, नीतिज्ञ, तकनीक तथा व्यवहार के मर्मज्ञ, अनेक जीवन के धन्धों में लगे, लोहार, तरखान कुम्हार, पशुपालक आदि का सहयोग आवश्यक है।

अकादमी ने लगभग पचास हजार शब्दों का संग्रह किया है जिनको अकारादि क्रम से नियमित किया जा रहा है। जैसे-जैसे शब्द सूचक मण्डल से नये पुराने हिमाचल में व्यवहृत शब्द आते जाएंगे उनका समावेश यथाविधि किया जाएगा।

पाठकगण से निवेदन है कि आंचलिक शब्द अर्थ, उदाहरण, लोकोक्ति, निर्वचन आदि सहित यथाज्ञात भेजने की कृपा करें। जिस बोली में जो शब्द आप भेजें उसका क्षेत्र जिला तहसील का उल्लेख करना भी न भूलें।

पहाड़ी भाषा में कविता के क्षेत्र में प्रगति हुई। अनेक प्राचीन तथा आधुनिक शब्दों का समावेश कविता के अनेक रूपों में आया है। गद्य शैली नाटक-उपन्यास कहानी में प्रचुर सामग्री उपलब्ध नहीं है जो भी स्वतन्त्र रूप में तथा पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित हुई है, वह शब्द संग्रह की दृष्टि से उपादेय है। कवियों, लेखकों, समालोचकों तथा विचारकों से अनुरोध है कि अपनी रचनाओं में प्रयुक्त ऐसे आंचलिक शब्दों की सूची भेजने की कृपा करें। शब्द के साथ वाक्य प्रयोग जो आपने अपनी रचना में दिया है उनका सन्दर्भ सहित उल्लेख करने की कृपा करें जिसका समावेश कोश में किया जा सके।

पहाड़ी-हिन्दी शब्दकोष रचना में आपके सतत सहयोग से साहित्यश्री में वृद्धि होगी। ऐसी उज्ज्वल आशा है।

सोमसी के अंकों में भाषा से सम्बन्धित लेख समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं जिनपर पाठकों की प्रतिक्रिया का स्वागत होगा।

◻ डॉ० बंशीराम शर्मा

यशपाल की कहानियों में हिमाचली जनजीवन की झलकियां

□ डॉ० सुशील कुमार फुल्ल

कहानी चाकलेट का टुकड़ा नहीं है, जिसे जब चाहा, जैसा चाहा सांचे में ढाल कर बना लिया। कहानी गद्य की सर्वाधिक स्वच्छन्द विधा है तथा निरन्तर विकासमान है। कहानी अरस्तू की इस परिकल्पना को भी नकारती है कि रचना का आरम्भ, मध्य एवं अन्त होना चाहिए। वस्तुतः कहानीकार की जटिल मानसिकता ही कहानी की मांसपेशियों में प्रतिबिम्बित होती है। यही कहानी की प्रभविष्णुता का रहस्य है। और कहानी का कथ्य एवं पृष्ठभूमि जितने अधिक धरती से जुड़े होंगे, रचना उतनी ही अधिक प्रासंगिक एवं सार्थक होगी।

यशपाल की कहानियों में हिमाचली जनजीवन की झलकियां ढूंढने से पहले यह प्रासंगिक होगा कि कहानी के विषय में उनके क्या विचार हैं, इस पक्ष से अवगत हो लें। यशपाल ने लगभग दो सौ कहानियां लिखी हैं तथा उनकी कहानियां सोलह कहानी-संग्रहों में संकलित हैं। यह रोचक तथ्य है कि हर कहानी-सग्रह की भूमिका में यशपाल ने 'कहानी' के बारे में टिप्पणी की है। समर्पण के शब्दों में भी लेखक की मानसिकता झलकती है। कहानी के बारे में यशपाल के विचार कितने शिथिल थे, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि 'देखा सोचा समझा' पुस्तक को कहानी-संग्रह कहा गया है, जबकि फ्लैप पर प्रकाशकीय में कहा गया है 'कलाकार यशपाल ने जीवन के विभिन्न पहलुओं पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण को कहानी की सी रोचकता के साथ प्रस्तुत किया है... अपने अनुभवों पर आधारित यह निबन्ध संग्रह नये विचारों को बल देगा।'[1] इस में संकलित 'शिमला से कुल्लू' [2] यात्रा-कथा निःसन्देह कथात्मक रोचकता लिये है परन्तु उसे कहानी नहीं कहा जा सकता।

कहानी-संग्रहों की भूमिकाओं में से कतिपय उद्धरण कहानीकार यशपाल की मानसिकता, विचारधारा एवं पहाड़ के प्रति उनके मोह को रेखांकित करते हैं। प्रस्तुत है कतिपय अंशों की बानगी :

---

1 देखा सोचा समझा (1976), विप्लव कार्यालय, लखनऊ, पृ० 1

2 वही, पृष्ठ 34 से 74 तक

क 'हमारी कल्पना का आधार जीवन की ठोस वास्तविकताएं ही होती हैं, इसी लिये कथा-कहानी के रूप में कल्पना का महत्व है।'[3]

ख 'कहानी का सप्रयोजन और सार्थक होना तो अनिवार्य है परन्तु सामाजिक कल्याण की कामनाओं से लिखी सभी रचनाओं को कहानी नहीं कह दिया जाना चाहिए। ... समय समय पर विचार-वस्तु के लिए उपयोगी माध्यम चुनने के विचार से मैंने स्वयं शब्द-चित्रों और अनुभूति-प्रधान निबन्धों आदि की शैली का प्रयोग किया है और उन्हें प्रकाशन की सुविधा के लिए कहानी संग्रहों में सम्मिलित भी कर लिया गया है परन्तु ऐसी रचनाओं को कहानियां मान लिये जाने का मैं आग्रह नहीं कर सकता।'[4] (1 जुलाई, 1954)

ग '... मेरी धारणा रही है कि कहानी की कला—दृष्टान्त द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति है। दृष्टान्त का प्रयोग चाहे बहुत संक्षेप अथवा संकेत मात्र से ही हो परन्तु कहानी का मेरुदण्ड दृष्टान्त ही होता है।'[5]

घ 'कला के अनेक सुन्दर और सबल रूप हैं। उनका एक ढंग कल्पना से नई दुनिया बना लेना भी है। इसी को कहानी घड़ना भी कहते हैं। अपने परिमित सामर्थ्य के कारण मैं उतना ही करके सन्तोष पाना चाहता हूं।'[6] (3 दिसम्बर, 1941)

ङ 'मुझे यदि संकीर्णता और संघर्ष से भरे नगरों में ही अपना जीवन बिताना पड़ता तो मैं या तो आत्महत्या कर लेता या पागल हो जाता। भाग्य से बरस में तीन मास के लिए कॉलिज में अवकाश हो जाता है और मैं नगरों के वैमनस्यपूर्ण संघर्षों से भागकर पहाड़ में अपने गांव चला जाता हूं।'[7] (अगस्त, 1949)

च 'मुझे इतना भरोसा है कि इन कहानियों को विधा तथा अभिव्यक्ति के प्रकार आदि के दृष्टिकोण से सम सामयिक या नयी कहानी की कोटि में न रख सकने पर भी भाव तथा कथ्य की दृष्टि से इन्हें रूढ़िग्रस्त कोटि में नहीं गिना जायेगा।'[8] (22 फरवरी, 1964)

---

3 पिंजरे की उड़ान (1975), यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, पृष्ठ 4 (दो शब्द)
4 तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं (1971), पृ. 7, विप्लव प्रकाशन, लखनऊ।
5 सच बोलने की भूल (1978), यशपाल, विप्लव प्रकाशन, पृ. 4
6 वो दुनिया (1977), यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, पृ. 6
7 फूलों का कुर्ता (1975), यशपाल, विप्लव प्रकाशन, लखनऊ, पृ. 4
8 खच्चर और आदमी (1975), यशपाल, विप्लव प्रकाशन, लखनऊ पृ. 6

छ 'कहानी सदा मनुष्य की होती है। ... कहानी द्वारा मनुष्य मानव समाज के रूप में अपनी समस्याओं में रूचि लेकर उनका चिंतन करता है। कथाकार का प्रयत्न इस प्रकार के चिंतन और विचार की प्रक्रिया रूचिकर बना सकने का यत्न होता है' 9 (6 सितम्बर, 1958)

ज 'मेरी रचनाएं केवल मनोरंजन घटनाचक्र या विवरण नहीं बन पाई हैं। इन रचनाओं से पाठकों को प्राय: ही मनोरंजन की तह या पार्श्व में अपने संस्कारों या अभ्यस्त विश्वासों पर खरोंच या चुभन की असुविधा भी अनुभव होती है।'10

उपर्युक्त उद्धारणों के विश्लेषण से कतिपय सूत्र ग्रहण किये जा सकते हैं, यथा यशपाल की कहानियां केवल दृष्टान्त का प्रसार है, जिसके माध्यम से लेखक अपने विचारों एवं चिंतन को अभिव्यक्त करता है, दूसरे, कहानी वास्तविकताओं पर आधारित होती है यथा वास्तविकताएं कल्पना की उर्वरा उपज होती है, तीसरे, कहानीकार का दृष्टिकोण सदा विकसनशील होता है। सामाज सापेक्ष सत्य को यथार्थ के धरातल पर उकेरना लेखक का अभीष्ट होता है। चौथे, कभी-कभार शब्द चित्र भी कथा-कहानी का जामा पहनते हैं। पांचवे, कहानीकार पहाड़ से जुड़ा है।

यशपाल के कहानीकार को लेकर इसीलिए अनेक विवादास्पद दृष्टिकोण देखने में आते हैं। इसका प्रमुख कारण यशपाल स्वयं हैं। 'वे समसामयिक सन्दर्भों में बदलते हुए मूल्यों को स्वीकार करते हैं।'11 आज मार्क्सवादी समीक्षक उनके प्रति असन्तोष व्यक्त करते हैं तो प्रकाशन्तर से उनकी सृजन शक्ति को ही स्वीकार करते हैं। सृजनात्मक-शक्ति अपना रास्ता स्वयं तय करती है, किसी विचारधारा या पार्टी प्रतिबद्धता का 'लकीर का फकीर' होकर अनुसरण नहीं करती। यशपाल ने अपने प्रेरणा-स्रोत का उल्लेख करते हुए लिखा है, 'परिस्थितियों के अनुसार विचारधारा का निश्चय करने में ही मनुष्य स्वतन्त्र हैं। विचारधारा में परिवर्तन न कर सकना ही विचारों की परतन्त्रता है। आज मेरी प्रेरणा का मुख्य स्रोत अपने समाज में विचारों की ऐसी स्वतन्त्रता की भावना उत्पन्न करता ही है'12 डॉ० बच्चन सिंह ने यशपाल की कहानियां प्रेमचन्द की परम्परा की मानते हुए उन्हें 'नियोजित' माना है। अभिप्राय: यह है कि यशपाल की कहानियां खूटी पर टंगे कथानक हैं। प्रेमचन्द में सुधारवाद की प्रमुखता है तो यशपाल में मार्क्सवाद और फ्रायडवाद की।13 डॉ० इन्द्रनाथ मदान का मूल्यांकन अधिक सही जान पड़ता है। उन्हीं के शब्दों

---

9 ओ भैरवी (1966), यशपाल, विप्लव प्रकाशन, लखनऊ, पृ. 5

10 मेरी प्रिय कहानियां (1976), यशपाल, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, पृ. 6

11 यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व (1978), सं. रामव्यास पाण्डेय तथा श्रीनिवास शर्मा, मिणमय, 462-बी रवीन्द्र सरणी कलकता-5 पृ. 135

12 यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व (1978), पृ. 136

13 प्रतिनिधि कहानियां (1973), सं. डॉ० बच्चन सिंह, अनुराग प्रकाशन, वाराणसी पृ. 15

में 'वास्तव में यशपाल के मुनि (चिन्तन) और इनके ऋषि (सृजन) में विरोध की स्थिति है। इनका मुनि इनके ऋषि से अधिक सशक्त है और प्राय: इनके ऋषि पर हावी रहता है। कभी-कभी इनका मुनि जब कहानी में सो जाता है, तो ऋषि को सृजन का अवसर हाथ लग जाता है। इनकी कुछ कहानियों के अन्त में इनका मुनि जाग भी पड़ता है। इस तरह ऋषि और मुनि के माध्यम से इनकी कहानी की रचना-प्रक्रिया के स्वरूप को आंका जा सकता है। इस प्रकार इनकी कहानियां रचना प्रक्रिया की दृष्टि से तीन तरह की हैं। पहली तरह की कहानियों के सृजन प्रक्रिया में चिन्तन बाधक सिद्ध नहीं होता, दूसरी तरह की कहानियों के अंत में चिन्तन का सृजन पर हावी होना है और उसकी साश्लिष्टता को ठेस पहुंचाना है और तीसरी तरह की कहानियां निबन्धात्मक है या कथात्मक निबन्ध है।'[14]

अपने आलेख के आरम्भ में मैंने कहानी को चाकलेट का टुकड़ा मानने से इन्कार किया है परन्तु यशपाल के लिये कहानी चाकलेट का टुकड़ा है भी और नहीं भी। कभी यशपाल खूंटी पर पात्रों को टांग देते हैं लेकिन कभी-कभी पात्र खूंटी से फिसलते हुए स्वतन्त्र हो जाते हैं और अपने व्यक्तित्व एवं चरित्र का निर्माण करते हैं। ऐसे क्षणों में यशपाल की कहानीकला चरम स्पर्श करने लगती है।

हिमाचली जन-जीवन की झलकियां बनाम आंचलिकता

क्रान्तिकारी लेखक यशपाल पर जब भी समीक्षकों ने अपनी टिप्पणी की है, तो उन्हें किसी न किसी कठघरे में खड़ा करके उनकी रचनाधर्मिता पर लेबल ही चस्पां करने का प्रयत्न किया है। कभी उन पर यौन का आरोप लगाया जाता है तथा 'प्रतिष्ठा का बोझ'[15] कहानी में भोग लिप्सा के नग्न संयोग-चित्रण का उदाहरण दिया जाता है और कभी उन्हें मार्क्सवाद का पक्षधर कह कर प्रचारवादी लेखक करार दिया गया है। परन्तु लेखक की उन कहानियों का ज्यादा नोटिस नहीं लिया गया जो पहाड़ी जीवन को एकाएक साकार करती हैं। वास्तव में पहाड़ी जीवन से सम्बद्ध यशपाल की कहानियां यशपाल के मुनि एवं ऋषि का संतुलित रूप प्रस्तुत करती हैं।

किन्हीं विशिष्ट कहानियों में हिमाचली जन-जीवन की झलकियां देखने के पूर्व यह कह देना चाहूंगा कि यशपाल की कहानियों में आंचलिकता नियोजित या कन्ट्राइवड नहीं बल्कि इसलिए है कि यशपाल का पैतृक गांव हिमाचल में था और पहाड़ उसकी रग-रग में था। जन्म फिरोजपुर

---

14 हिन्दी कहानी (1968), डॉ० इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली पृ. 92-93
15 फूलों का कुर्ता (1959), पृ. 58-70.

(पंजाब) में हुआ। शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी एवं लाहौर में हुई।[16] अभिप्राय: यह कि जीवन का अधिक समय मैदानों में ही व्यतीत हुआ परन्तु पहाड़ फिर भी हावी है। ध्यातव्य है कि यशपाल की कहानियों में नायक भ्रमण के लिये हिमाचल, जम्मू कश्मीर एवं उत्तर प्रदेश की पहाड़ियों में जाता है अत: 'देस और पहाड़' की समान्तर जीवन पद्धति उद्‌भासित होती है। एक खिचाव, एक विरोध परिवेशगत विशेषता के साथ उभरता है। कहानी मैदान के लोगों की भी हो, तो भी उसमें कहीं न कहीं पहाड़ी कस्बों का नाम आ जाता है। यशपाल की ऐसी कहानियों को पढ़ कर रुडयार्ड किपलिंग की पहाड़ी लोगों की पहाड़ के प्रति कोशिश स्मरण हो आती है।

यशपाल में आंचलिकता का व्यामोह नहीं है परन्तु जिन गिनी-चुनी कहानियों में लेखक ने हिमाचली जन-जीवन को आधार बनाया है, वे कहानियां कथ्य एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से सफल हैं कालजयी कृतियां हैं।

अतिथि सत्कार एवं दुत्कार की कहानी : आतिथ्य

'फूलों का कुर्ता' कहानी संग्रह की प्रथम कहानी 'अतिथ्यि हिमाचली जनजीवन को उद्‌घाटित करने वाली एक स्शक्त कहानी है। मेरठ का रहने वाला युवक रामशरण कहानी का नायक है। वह जिज्ञासवश हिमाचल के महासुई क्षेत्र में भ्रमण पर निकलता है। ग्रामीण लोगों का भोलापन तथा क्रूरता एक साथ चित्रित है। गांव का एक परिवार उसे संशय की दृष्टि से देखता है तथा समझता है कि'देस' (मैदान) के लोग उनकी औरतों को भगाने आते हैं।

जब रामशरण रात काटने के लिए शरण चाहता है, तो सब लोग उस पर टूट पड़ते हैं। 'बाहर निकल आया आदमी खिड़की से बात करने वाले की ओर घूम कर बोला –- 'बदमाश है।' और उसने रामशरण की ओर घूम कर धमकाया, 'चले जाओ। यहां दुकान सराय नहीं हैं। बदमाश। चोर।... आये सैर करने वाले। भाग जाओ।'[17]

'इस आदमी की बगल में हाथ भर लम्बा दाव दिखाई दे रहा था। वही दाव जिससे पहाड़ी लोग बकरे का सिर और पेड़ की मोटी डाल एक हाथ में काट ड़ालते हैं।'

......'निकल जा यहां से नहीं तो अभी काट डालूंगा।'[18]

---

16 क्रान्तिकारी साहित्यकार यशपाल (1985), डॉ॰ ब्रह्मदत्त शर्मा, यशपाल साहित्य परिषद, नादौन, पृ. 9-57.

17 फूलों का कुर्ता (1959), पृ. 14

18 वही, पृ. 14

रामशरण डरा सहमा एक वृक्ष के नीचे ठिठुरता हुआ बैठ जाता है ।...वह डर गया...शायद कोई जंगली जानवर था...लेकिन तभी उसे सुनाई दिया — 'ओ परदेसिया, ओर मुसाफिरा ।'... यहां सर्दी में मर जाएगा । देखा- अम्बर (आकाश) में पानी कैसे जोर का चढ़ रहा है ।'[19]

एक ने दुत्कारा था, तो दूसरे परिवार ने उसे पुचकारा । तम्बाकू पेश किया ... थाली में मकई की रोटी...और मक्खन...साथ ही व्याख्यान... 'यह देस के आदमी बड़े बदमाश होते हैं, सब जानते हैं । 'रखेड़ी' गांव में रत्नू की घरवाली को एक पंजाबी भगा ले गया । कोई इन लोगों को घर में पांव कैसे रखने दे... देस के लोग बड़े बदमाश होते हैं...इस गांव के लोग बड़े जालिम हैं ... '[20]

परदेशी पाहुने के पांव दबाने का उल्लेख भी इस कहानी में है । गृहिणी पाहुने के पैताने बैठ कर उसके पांव दबाती है... स्त्री कभी मुस्कराकर अपने पति की ओर देखकर कह देती—'जाओ ऊपर जा कर लेटो न ।' कभी रामशरण की ओर देख कर मुस्कता देती और बहुत मनोयोग से उसके पांव, पिंडलियां, जांघें, कमर और पीठ दबा रही थी ।[21]

जब तक पाहुना घर में है, उस का पूरा आतिथ्य किया जाता है । विदाई पर उसे स्त्री शहद और मक्खन से चुपड़ी रोटी रास्ते के लिये देती है । गृहस्वामी ने उसे सड़क तक पहुंचाया तथा कठोर स्वर में धमकाया — 'चला जा बदमाश यहां से । खबरदार, किसी से कहा कि घर में टिकाया था । मैं बड़ा जालिम आदमी हूं । ...बोटी...बोटी काट डालूंगा । आ गया ।' उसने एक घृणित गाली देकर कहा, मेहमान बन कर औरत चोरों के देश का बदमाश ।[22]

आतिथ्य में न केवल पर्वतीय स्वभाव की सरलता एवं कठोरता का चित्रण है अपितु वेश भूषा, वनस्पति आदि का भी सहज स्वाभाविक चित्रण है । दाब, बीघू, तोष, खर्शू आदि आंचलिक शब्दों का प्रयोग भी हुआ है । कहानी पर किसी विचार का बोध नहीं, पात्र कठपुतलियां नहीं हैं अपितु जीवन्त धड़कन के परिचायक हैं । अंचल विशेष का जीवन साकार हो उठता है ।

डरकोप कश्मीरी : निहत्था आदमी क्या लड़ेगा

हफजा मजदूर पटवारखाने मे राजस्व जमा नहीं करवा पाता, तो पटवारी उसकी मुश्कें बंधवा देता है और अखरोट के पेड़ के नीचे बांध देता है । पठान आक्रमण करते हैं...पटवारखाना

19 फूलों का कुर्ता (1959), पृ. 16
20 वही, पृ. 17
21 वही पृ. 19
22 वही पृ. 20

लूटते हैं...पटवारी को गोली मार देते हैं...हफजा को रिहा करते हैं। फिर सिपाहियों का आक्रमण हो जाता है...पठान हारते हैं...हफजा फिर राजा का कैदी हो जाता है...उसे लड़ने को कहा जाता है...वह कहता है... 'क्या लड़ेगा, खुदाया गरीब आदमी है...गरीब किसान किसी से नहीं लड़ता। पठान के पास बन्दूक है।'[23]

हफजा के पास कोई हथियार ही नहीं तो लड़ेगा क्या...किसान मजदूर की विवशता का सांकेतिक चित्रण...और कश्मीर के पहाड़, वहां की परम्पराएं एवं समस्याएं इस कहानी में चित्रित हैं। कश्मीरी 'फिरन', 'कण्डी' आदि आंचलिक शब्दों का प्रयोग हुआ है।

प्रायश्चित : दीनता का दण्ड

हिमाचली जन-जीवन की झलकी प्रस्तुत करती यशपाल की प्रस्तुत कहानी मानवीय संवेदना की अप्रतिम रचना है। निर्धन होना अभिशाप है। और चपरासी का पुत्र होना और भी बड़ा दण्ड। सामाजिक विषमता की यह कहानी सहज, स्वाभाविक ढंग से अपने कथ्य क प्रतिदान करती है। कहानी मे लेखक का मुनि कोई व्यवधान उपस्थित नहीं करता। लगता है कहानी में यशपाल का अपना जीवन किसी न किसी प्रकार से झलकता है... 'पहाड़ों के सम्बन्ध में सदानन्द की जानकारी का आधार उसका केवल जन्म से पहाड़ी होना ही था। छः सात वर्ष की आयु में, माता के देहान्त के पश्चात् सदानन्द को पहड़ों की सैर क्या, अपनी जन्मभूमि देखने का भी अवसर न मिला था। अब बीस वर्ष की आयु में पहाड़ो के सम्बन्ध में उसका ज्ञान, देखे हुए की समृति की अपेक्षा पढ़ी-सुनी बातों पर ही अधिक था। शैशव की जो स्मृति शेष रह गई थी, वह दीर्घकाल के व्यवधान से धूमिल और कल्पना से अतिरंजित होकर, पहाड़ों के पुनः साक्षात्कार के लिये उत्कट उत्सुकता बन गई थी। अपने आप को पहाड़ी बता सकना सदानन्द के लिये अपनी कृश्च्छता के गोपन में भी सहायक हो जाता था।[24]

कहानी का नायक सदानन्द धर्मशाला यात्रा पर आता है। अपनी मौसी के घर रहता है... परन्तु वहां से चुपचाप खिसक लेता हैं...धनवान और निर्धन की खाई...एक आर्यसमाजी के घर में ठहरता है ... वहां उसकी खूब खातिर होती है परन्तु जब यजमान को पता चलता है कि वह चपरासी का पुत्र है तो उसके प्रति व्यवहार एकाएक बदल गया। और पल भर बाद सुनाई दिया, वे पहाड़ी में बोले थे — अरे कहीं भी खाट डाल दो, चपरासी का लड़का है। हां, जरा भारी कपड़ा दे देना, जाड़ा न लगे।'[25]

---

23 फूलों का कुर्ता (1959), डरपोक कश्मीरी (71-81)

24 प्रतिनिधि कहानियां (1966), सं. डॉ. अष्टभुज प्रसाद पाण्डेय राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रकाशन, पृ. 146-47 (प्रायश्चित)

25 वही पृ. 159

सदानन्द प्रातः चुपचाप उठ कर चला गया था बिना धन्यावाद किये ... ... और फिर प्रोफैसर सदानन्द बन कर उसने दीनता का प्रायश्चित किया। कहानी में कांगड़ी के शब्दों का प्रयोग हुआ है, यथा 'लकड़ू तिन्नें न' खान-पान का भी यथास्थल जिक्र हैं।

तूफ़ान का दैत्य : अन्धविश्वासों पर प्रश्न-चिन्ह

झामामूची पर्वतीय गांव ... गांव का जीवन एवं दिनचर्या ... अन्ध विश्वास ... तूफान का दैत्य विनाश का प्रतीक ... मन्दिर का पुजारी पुंगपू तलवार और बर्छी से दैत्य से टक्कर लेता है ·· वह सफल नहीं होता ... तो गांव भर के लोग उसे अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं ... कोई दान-पुण्य नही करता।

फिर एक बार पुगपू तूफान को शान्त करने में सफल होता है ... ... ग्रामवासी पुंगपू को देवता का प्रतिनिधि मानने लगते हैं।

पुगंपू बर्छी उठाकर बोला, 'आज तूफान के दैत्य को परास्त कर मैंने कह दिया है कि उसकी पूजा का भाग, लाल ज्वाह् का आटा, चमर गाय का मक्खन, भेड़ का मांस और नमक उसे हर अमावस और पूनों को भेंट कर दिया जायेगा। अब उसे (दैत्य को) इस गांव में आने की जरूरत नहीं।' गांव वालों ने श्रद्धा से सिर झुका कर मन्दिर में नियम से भेंट पहुंचाने की प्रतिज्ञा कर ली।[26]

हिमाचली लोगों के अन्धविश्वासों का चित्रण ... लेकिन अपना मत लेखक ने संकेत मात्र से बता दिया है ... अन्तिम पंक्ति देखें — 'तुम्हें क्या पुगंपू की दैवी शक्ति में सन्देह है। हुये तुम झामामूची गांव में।'[27]

दूसरी नाक : नकटों के लिए एक झलक

'दूसरी नाक' कहानी में कांगड़ा की खास डाक्टरी प्रसिद्धि की झलक मिलती है। कहते हैं नकटे लोग अपनी नाक लगवाने कांगड़ा के डाक्टरों के पास आते थे ... शायद इसी तथ्य की झलक यशपाल की कहानी 'दूसरी नाक' में मिलती है।

जब्बार का, शब्बू नाम की कन्या से प्रेम विवाह हो गया। मां-बाप ने विरोध किया परन्तु प्रेम के आगे झुकना ही पड़ा। लड़की के लिये अढ़ाई सौ रुपये देने पड़े। जब्बार काम पर बाहर

---

26 वो दुनिया (1977), लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, तूफान का दैत्य, पृ. 65
27 वही, पृ. 65

गया परन्तु अपनी पत्नी को देखने लौट आया ... जब्बार को अंधेरे में सोलह मील चल कर ऊषा की धुंधली लालिमा में पहाड़ों पर अपने गांव की छतें दिखाई दीं ... वह एक चट्टान पर बैठकर अपने घर के दरवाजे की ओर देखने लगा। उसने सोचा, शब्बू पानी भरने निकलेगी तो उसे देख लेगा। बावड़ी पर चलकर बैठूं, शब्बू पानी भरने आयेगी तो उससे दो बातें कर लौट जाऊंगा। 28

जब्बार के मन में पत्नी के प्रति संशय हुआ और बोला—बहुत घमण्ड हो गया है हुस्न का—नाक काट लूंगा।

शब्बू को पति की खीझ पर हंसी आ गयी, बोली-बारह बीसें और दस रुपये की नाक है' और मुस्करा दी। (पृ. 45) जब्बार ने छुरे से शब्बू की नाक काट दी।

एक पड़ोसिन बुढ़िया ने चिल्ला कर कहा-अरे कोई जल्दी से भेड़ बकरी का ताजा गरम-गरम जिंदा गोश्त का टुकड़ा काट कर घाव पर रख दो नहीं तो लड़की मर जाएगी'[29] जब्बार ने अपनी जांघ का गरम मांस निकाल कर शब्बू के नाक पर रख दिया।

'शब्बू पूरे दो दिन उपवास पर रही तो जब्बार ने रबड़ की नाक की कीमत चालीस रुपये डाक्टर के यहां जमा करवा दी परन्तु पत्नी से वायदा ले लिया कि शब्बू नाक लगाएगी जरूर गैर मर्द उसे घूरेगा तो झट नाक उतार कर जेब में डाल लेगी'[30]

खच्चर और आदमी : समयानुसार न ढलने का दण्ड

'खच्चर और आदमी' बर्फानी पहाड़ों में, लाहुल-स्पीति में सैनिकों द्वारा उठाई जाने वाली समस्याओं को रेखांकित करती है। साथ ही पर्वतों में होने वाली प्राकृतिक आपदाओं का चित्रण बर्फ में दब जाने पर...रास्ता बन्द हो जाने पर। भोजन समाप्त होने पर जीवित रहने के लिये एक खच्चर दूसरी खच्चरों को खा जाती है परन्तु वैष्णव नाम का ब्राह्मण फौजी बहुत ज्यादा ठण्ड होने पर भी ब्राण्डी का सेवन नहीं करता और मर जाता है...खच्चर ने अपने आप को समय के अनुसार ढाल लिया लेकिन आदमी ने नहीं...शायद धर्म की वजह से, शायद संस्कारों की वजह से।

'भार्गव का, ओठों की ओर सिगरेट ले जाता हाथ रुक गया — धर्म विश्वास क्या, संस्कार क्या। देख लो, खच्चर ने स्थिति समझ कर आत्म रक्षा कर ली और संस्कारों से बंधा मनुष्य स्थिति अनुकूल आचरण नहीं कर सका।'[31]

---

28 वो दुनिया (1977), दूसरी नाक, पृ. 41
29 वही, पृ. 45
30 वही पृ. 46
31 खच्चर और आदमी (1975), यशपाल, विप्लव प्रकाशन, पृ. 104

न्याय और दण्ड : डूमना होने का दोष

यशपाल की कहानी 'न्याय और दण्ड' में हिमाचल के गांव में प्रचलित जातिपांति-वाद की कट्टरता का चित्रण है। धक्कू डूमने का लड़का है। मेले में वह बांस की पिटारियां आदि बेचकर थाली खरीद लाता है। उसने थाली में कभी खाना नहीं खाया था।

गांव भर में हलचल मच गई। डूमने कांसे की थाली क्यों खरीदें।

'दूसरे दिन सूरज निकलते मामा, मुखिया, ठाकुर लोग, गांव के बढ़ई और घिर्थ सभी लाठियां लेकर डूमनों की बखरी पर जा पहुंचे। धक्कू की थाली तोड़ दी गई। उनके जमा किये बांस और कथरियां फूंक दी गयीं। अनाज भरने की डोली भी तोड़ दी गई। झोंपड़ी के किवाड़ भी तोड़ कर फूंक दिये गये। धक्कू को चार छः लाठियां और दो दो उसके बाप-मां और चाचा-चाची को भी पड़ी।'

धक्कू चुप हो जाता है। कोई विरोध नहीं करता। परिस्थितियों से समझौता कर लेता है।

'न्याय और दण्ड' कहानी विचार के अतिरिक्त हिमाचली परिवेश एवं संस्कृति को भी उजागर करती है। मेले का चित्रण, पहाड़ी झिझोटियां गाना और महिलाओं का बाहर निकलना कहानी को सांस्कृतिक रन्ध में सराबोर कर देता है। यथा, 'पहाड़ी ग्राम-बंधुएं मेले का सिंगार किये, भारी भारी लहंगे पहने और पीले लाल रंग से गंधाती नयी पिछौरियां ओढ़े इन दुकानों को घेरे बैठी थीं। कभी वे घूंघट का पल्ला उठाकर आगे पीछे भी ताक लेतीं। घूंघट में से उनकी बड़ी बड़ी नथें झलक जातीं। उनके गोरे चेहरों पर लाल-पीले घूंघटों में से छन कर पड़ता प्रकाश उनके चेहरों और आंखों के कटाक्षों पर और पान चढ़ा देता था।'[32]

धक्कू झिझोटियों के बोल भी सुनता है —

> 'ब्राह्मण का छोकरा बईमान हो गया।
> मेरे ता रो रा कर तीनां कपड़े भीग गये।'
>
> तथा
>
> 'दिल की सांकल खुला के रे,
> मन में प्यार बसा के रे,
> बन्दी को बिलगा दिया तूने।'

---

32 ओ भैरवी (1966), न्याय और दण्ड, पृ. 95-96

तूने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं : गलतफहमी का रोमांस

प्रस्तुत कहानी में भी पर्वत की छवि रेखांकित है परन्तु कहानी का मूलाधार रोमांस में परिणत हो जाता है ... निगम ने नग्न चित्र माया को दिखाए थे ... सो उस में निगम के प्रति उतेजना जागृत होती है ... क्या इसे पर्वतीय प्रेम का प्रतीक माना जाए ।

'माया अपनी कुर्ती को खोल देने के लिये खींच रही थी । काजों में फंसे बटन खिंचे जा रहे थे और उसके स्तन चोंच उठाए तीतरों की तरह कुर्ती को फाड़ देना चाहते थे ।[33]

निगम के प्रेम से माया स्वस्थ होने लगी थी परन्तु निगम के उसे दुत्कार देने पर वह पुनः अस्वस्थ होने लगी । प्रेम भी रोग का उपचार हो सकता है, इस का चित्रण कहानी में है ।

सच बोलने की भूल : पहाड़ और मैदान का टकराव

छुट्टी बिताने के इरादे से पर्वत पर पहुंचे लोगों के प्रति पर्वतीय किसान के मन में आक्रोश... लोभ एवं मोह-भंग का चित्रण पूरे पर्वतीय परिवेश के साथ हुआ है ।

'खिड़की से एक किसान ने सिर बाहर निकाल कर क्रोध से फटकार दिया — 'तुम शहरी हो न । तुम आवारा लोगों का देहात में क्या काम ? चोवरी चकारी करने आए हो । भाग जाओ, नहीं तो काट कर दो टुकड़े कर देंगे और कुत्ते को खिला देंगे ।'[34]

'किसान और क्रोध से झल्लाया—'पड़ाव और डाक-बंगला तो यहां से सात मील है । कौन तुम्हारे बाप का नौकर है जो इस अन्धेरे में रास्ता दिखाने जायेगा । भाग जाओ यहां से, नहीं तो कुत्ते को अभी छोड़ता हूं ।'[35]

किसान की पत्नी के अनुरोध पर शहरी और उस की बच्ची को रात काटने के लिये वहां ठहरा लेते हैं । किसान और उसकी पत्नी बच्ची के गले से कंठी उतारना चाहते हैं...जब सुबह वह कंठी स्वयं ही उन्हें आतिथ्य के कारण देता है तो वे बड़े ख़ुश होते हैं ।

'स्त्री कंठी हाथ में ले कर प्रसन्नता से बोली — हाय । इसे तो मैं मठ में चढ़ा कर मानता मानूंगी । हमारी मुर्गियों पर देवताओं की कोप दृष्टि कभी न हो ।'

---

33 तुम ने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं (1971), विप्लव प्रकाशन, लखनऊ
34 सच बोलने की भूल (1978), विप्लव प्रकाशन, पृ. 12
35 वही पृ. 13

स्त्री की सरलता मेरे मन को छू गयी, रह न सका। कह दिया — तुम्हें धोखा नहीं देना चाहता, कंठी के मोती नकली हैं।'[36]

स्त्री ने कंठी उसकी ओर फेंक दी और कहा—शहर के लोगों से धोखे के सिवा और क्या मिलेगा।'

क्या सच बोलकर उस ने भूल नहीं की थी

प्रेम का संसार : पति का निरन्तर इन्तजार

रफिया आजीवन अपने प्रति की प्रतीक्षा करती रहती है। वह रुपया कमाने के लिये गांव छोड़कर लाहौर चला चला गया था और जिसको गांव लौटकर आने के लिये वह अपनी भैंसे... बेच बेच कर रुपया भेजती रही और जब वह फिर भी घर नहीं लौटा तो उसे खोजने के लिये वह अपने पति फज्जा की एक बास्कट और एक छुरा कपड़ों में लपेट कर चल पड़ी। पुलिस ने उसे पकड़ लिया। पुलिस के पूछे जाने पर उसने कहा — उसने मेरी तमाम उमर बरबाद कर दी। मैंने उसके लिये सब कुछ किया, उसके लिये मैं बांझ बनी। अब वह मेरे साथ नहीं आएगा तो मैं उसे कत्ल कर दूंगी।'[37] अन्त में जेल से निकल कर फज्जा जब उसके सामने आ खड़ा होता है, तो बुढ़ापे में वे एक दूसरे को पहचानते तक नहीं। जब उसे बताया जाता है कि यह वही है जिसके लिये वह 23-24 वर्ष इन्तजार करती रही तो वह फज्जे को गालियां देती है तथा बास्कट वहीं छोड़ कर चली जाती है।

'प्रेम का रूप' में कश्मीर के पर्वतों का चित्रण है। कश्मीरी के शब्द हती, कश्मीर हती' का भी प्रयोग मिलता है।[38]

पहाड़ की स्मृति : परसराम की कृति

लाहौर के परसराम ठेकेदार ने पुल बनवाने के ठेके लिये थे। पुल पर एक पहाड़िन काम करती थी। परसराम से उसके सम्बन्ध थे। ठेकेदार ने कहा था—वह जल्दी ही लाहौर से लौटेगा और उसे ले जाएगा लेकिन वह लौटा नहीं। परसराम से पहाड़िन की एक लड़की भी हुई जो पांच बरस की हो गयी परन्तु उसका पिता नहीं लौटा। वह औरत पहले तो निरन्तर परसराम का इन्तजार करती है। आगन्तुक से वह यही याचना करती है कि वह परसराम को उस का यह

---

36 सच बोलने की भूल (1978), पृ. 17
37 पिंजरे की उड़ान (1975), प्रेम का संसार, पृ. 51
38 वही पृ. 47

सन्देश पहुंचा दे। 'परसराम से मेरा सन्देशा जरूर कहना। कहना दिन भर सड़क ताका करती हूं, मैं बड़ी इन्तजार में हूं। पांच बरस हो गये, अब जरूर लौट आ। तेरी लड़की तुझे पुकारती रहती रहती है ... कहोगे न।'[39]

उत्तराधिकारी : औरतके ढांटी होने का दर्द

'उत्तराधिकारी' कहानी आंचलिकता एवं समस्यापरकता की दृष्टि से बेहतरीन कहानी है। इसमें पर्वतीय क्षेत्र की अनेक समस्याओं को मार्मिकता के साथ छुआ गया है। फौजी लोगों की पत्नियों की विशिष्ट समस्या सशक्त रूप में उभर कर सामने आती है। कुशली का पति लाम पर था, पीछे उसके बेटा हो गया, तो पति का क्रोध स्वाभाविक है। फिर वह दूसरे व्यक्ति की ढांटी बनती है ... फिर तीसरे के साथ चल देती है। भले ही औरत एक के बाद दूसरे के घर बैठती है परन्तु सामाजिक विसंगतियों तथा आर्थिक अटकलों एवं शारीरिक आवश्यकताओं का चित्रण इस कहानी में बहुत ही संतुलित रूप में हुआ है। बांझ स्त्रियों के लिये बालेश्वर की पूजा के अन्ध-विश्वास का चित्रण भी है। बालेश्वर की पूजा के लिये गयी कुशली किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा उकसाये जाने पर उसी के साथ हो लेती है। बेहोश होने की स्थिति का चित्रण ध्यातव्य है। 'उसे अनुभव हुआ, उसका शरीर हिल रहा है। उसने निश्चय किया वह डिगेगी नहीं। कुशली को मालूम हुआ-सामने का मन्दिर हिलने लगा, हिल कर कबूतर भी तलाब के चारों ओर उड़ने लगा, पहाड़ भी झूले की चरखियों की तरह घूमने लगा, परन्तु वह कहती रही — 'नहीं गिरुंगी, नहीं गिरुंगी ... ' सचमुच गिरने लगी ... किसी ने उसे थाम लिया, उसे जान पड़ा देवता ने उसे थाम लिया।'[40]

हरसिंह कुशली के लिये मारा मारा फिरता है। अलमोड़ा प्रांत में घूमता है और अन्ततः उसे पता चल जाता है कि कुशली गनेरसिंह के साथ है। उसके लड़का भी है। गनेरसिंह ने क्योंकि हर्जाना नहीं दिया था, इसलिये हरसिंह उस पर अपना अधिकार जमाता है। पंचायत में हरसिंह की दलील ध्यातव्य है '···मेरे खेत की ककड़ी की बेल फैलकर गनेरसिंह के खेत में चली गई। बोलो पंचो ... ककड़ी किसकी मानोगे जिसकी बेल उसकी ककड़ी ... जिसकी औरत उसका बच्चा हर्जाना देने से पहले औरत को गनेरसिंह की ढांटी मानते हो, तो बच्चा उसका। मैं अपना लूंगा। लड़के की मां आती है, तो मेरे सिर आंखों पर आये ... नहीं आती तो उसका मन। मैं हर्जाने का एक पैसा मांगू तो मेरे लिये गाय का खून। पंचों, यह परमेश्वर का न्याय है, नहीं तो अंग्रेज बहादुर की अदालत है ... मैं लड़के के बिना मरुंगा मुझे पानी की अंजलि कौन देगा।[41]

---

39 पिंजरे की उड़ान (1975), पृ. 58
40 मेरी प्रिय कहानियां (1976), उत्तराधिकारी, पृ. 89
41 वही पृ. 94

कहानी का अन्त रोचक एवं सार्थक है परन्तु आरोपित नहीं —'हरसिंह अपने एक बरस के उत्तराधिकारी को बड़े लाड़ और सन्तोष से गोद में उठाए दानपुर की ओर चला जा रहा था। कुशली उसके पीछे पीछे चली जा रही थी, जैसे गैया अपना बछड़ा उठाए ग्वाले के पीछे चली जाती है।[42]

झलकियां या तल्खियां

उपर्युक्त चर्चित कहानियों के अतिरिक्त और भी आंचलिक कहानियां यशपाल ने लिखीं यथा 'चित्र का शीर्षक' आदि। वैसे अनेक कहानियों में नैनीताल, मंसूरी, अल्मोड़ा, कांगड़ा, धर्मशाला, शिमला, महासू, श्रीनगर ... आदि अनेक पर्वतीय स्थानों के नामों का उल्लेख भी हुआ है। अतः उन्होंने अपने आप को हिमाचल तक ही सीमित नहीं रखा अपितु पर्वतीय प्रदेश में प्रचलित संस्कारों विश्वासों, कठिनाइयों आदि को शब्द दिये हैं। प्राकृतिक सम्पदा, प्रकृति चित्रण, परिवेश का चित्रण सहजात्मकता के साथ हुआ है... समास या आरोपित नहीं। यह ठीक है कि यशपाल को 'धर्म रक्षा' 'प्रतिष्ठा का बोझ' आदि कहानियों के कारण मांसलवाद का लेखक भी कहा जाता है परन्तु पहाड़ से सम्बन्धित उनकी कुछ कहानियां नितान्त, धवल धौलाधार की तरह निश्छल एवं प्रभावोत्पादक हैं। औरत को 'शीराजी कबूतरी' या 'काठियावाड़ी घोड़ी' कहने वाला यशपाल कुशली जैसी या परसराम द्वारा ठगी औरत जैसे पात्र का सृजन भी कर सकता है। यशपाल की ऐसी कहानियों में पहाड़ों की छवि, पहाड़ों की तल्खियां एकाएक साकार हो उठती हैं। पहाड़ से सम्बन्धित कहानियों में यशपाल का ऋषि अपनी पूरी गरिमा के साथ आ उपस्थित होता है तथा यह कहने में लेशमात्र भी संकोच नहीं कि पहाड़ों की झलकियां प्राप्त करने वाली कहानियां ही यशपाल की सही एवं कालजयी कहानियां हैं।

सह आचार्य (हिन्दी)
कृषि विश्वविद्यालय
पालमपुर-176 062 (हि. प्र.)

---

42 मेरी प्रिय कहानियां (1976), पृ. 95

सिरमौर में विवाह संस्कार

☐ डॉ० खुशीराम गौतम

सिरमौर में पहले समय में बाल विवाह की रीति प्रचलित थी परन्तु अब समय के साथ साथ यह कम होती जा रही है। पहले तो बच्चों की सगाई या मंगनी उनके जन्म से एक वर्ष बाद या इससे भी पहले कर दी जाती थी। कई बार तो विवाह भी तभी या दो तीन वर्ष बाद कर दिया जाता था और यह बाल विवाह बाद में पति पत्नी में विच्छेद का कारण भी बन जाता था। परन्तु विच्छेद होने पर लड़का या लड़की रीत (आपस में कुछ रुपयों का लेन देन) करके अपनी इच्छा अनुसार दूसरा विवाह कर लेते थे। पहले यह 'रीत' का रिवाज यहां बहुत प्रचलित था परन्तु अब युवा आयु में विवाह के कारण यह लगभग बन्द हो गया है।

सगाई

सगाई करने या विवाह की बात पक्की करने के लिए लड़के की ओर के लोग मिट्टी का बना घी से भरा एक पात्र जिसे स्थानीय बोली में 'घ्याळू' कहा जाता है, एक गुड़ की 'पेली' और लड़की के लिए पहनने के कपड़े का एक जोड़ लेकर लड़की के यहाँ जाते हैं। उनके साथ ब्राह्मण और नाई भी होते हैं। यदि कन्या पक्ष वाले लड़के की ओर से भेजी गई उपरोक्त वस्तुओं को स्वीकार कर लें तो सगाई पक्की समझ ली जाती है। यह पुनः उसी दशा में समाप्त समझी जाती है यदि लड़की या लड़के में से कोई एक पागल या कोढ़ी या इसी प्रकार के किसी असाध्य रोग से ग्रस्त हो जाए। यदि लड़के या लड़की में से किसी एक की किसी शारिरिक कमी का पता किसी पक्ष को लग जाए तो भी सगाई समाप्त समझी जाती है। परन्तु सगाई तोड़ने के लिए भाई चारे अथवा पञ्चायत की सहमति लेना परमावश्यक होती है। अन्यथा बिरादरी इसे हीनता और बेइज्ज़ती का कार्य समझती है। सगाई पक्की होने के एक या दो वर्षों के भीतर विवाह कर दिया जाता है।

विवाह के प्रकार

भारतीय धर्म ग्रथों में वर्णित किए गए आठ प्रकार के विवाहों में से सिरमौर में मुख्यतः प्रजापात्य तथा असुर विवाह ही प्रचालित हैं पर यहां इस को स्थानीय रूप दे दिया गया है। विवाह

को ये लोग ब्याह, झाझड़ा, प्रेणा, परवाला अथवा हार आदि नामों से पुकारते हैं। विधवा विवाह अथवा पुनर्विवाह का भी इस क्षेत्र में प्रचलन है।

गिरीपार में झाझड़ा अथवा हार या कन्या को विवाह से पहले ही भगा कर ले जाने का भी रिवाज है। कन्या को, उसके माता पिता को कुछ देकर भी मांग लिया जाता है। यह प्रथा कब से आरम्भ हुई इस के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। शायद यह प्रथा भारत में आर्यों के प्रवेश के पश्चात आरम्भ हुई हो। यह 'हार' अथवा कन्या को बरबस उठाकर ले जाने का ही सुधरा हुआ रूप प्रतीत होता है। यह कन्यादान प्रथा से, जो भारत के अन्य मैदानी भागों में बसने वाले अधिकतर हिन्दुओं द्वारा अपनाई हुई एक प्रथा है—भिन्न प्रतीत होती है। पत्नी पति की अर्धांगिनी होती है, यह आर्य विचार सिरमौर में कम ही देखने में आता है। यहां पर स्त्री विवाह विच्छेद करके पर-पुरुष को भी अपना सकती है क्योंकि यहां पर 'रीत' अथवा 'करेवा' प्रथा प्रचलित है। इसी प्रकार पुरुष भी पहली पत्नी के होते हुए दूसरी या अधिक पत्नियां ला सकता है। बहुपति प्रथा भी सिरमौर में प्रचलित है। कुआरी कन्या के विवाह में ही आरम्भिक धार्मिक अनुष्ठान किए जाते हैं। 'रीत' अथवा झाझड़े की दशा में उन्हें पूरा करना आवश्यक नहीं समझा जाता। विवाह अथवा ब्याह की दशा में वर तथा कन्या की जन्म पत्रियों में ग्रहों का मिलान आवश्यक समझा जाता है। यदि वर तथा कन्या के ग्रह न मिलें तो ऐसी दशा में वर के भाई के साथ ही विवाह की रस्में पूरी कर ली जाती हैं। परन्तु इससे पत्नी पर भाई का कोई अधिकार नहीं होता। स्त्री उसी भाई की होगी या रहेगी जिसके साथ आरम्भ में उसका विवाह होना निश्चित हुआ हो।

विवाह प्रक्रिया

विवाह का दिन निश्चित करने के लिए विवाह से सम्भवतः एक सप्ताह अथवा दस दिन पहले वर पक्ष वाले अपने ब्राह्मण—जिसे स्थानीय भाषा में पण्डत बोला जाता है—भाई तथा गांव के कुछ मुख्य व्यक्तियों के साथ दोनों गावों को मिलाने वाले रास्ते के मध्य में किसी जलाशय के निकट एकत्र हो जाते हैं। यहां पर कन्या पक्ष वाले भी इसी प्रकार आए होते हैं। इसे यहां स्थानीय बोली में 'ब्याहगणना' या कारपूजणी' कहते हैं। यहां कन्या पक्ष वाले वर पक्ष वालों को एक निश्चित दिन पर बारात सहित उनके यहां आने का निमन्त्रण देते हैं और बारात में सम्मिलित होने वाले पुरुषों की संख्या भी निश्चित कर ली जाती है जो कन्या पक्ष वालों के सामर्थ्य के अनुकूल तथा उनके कहने के अनुसार होती है। वहां उपस्थित लोगों का गुड़ आदि से मुंह मीठा किया जाता है तथा प्रत्येक की भलाई में मौली या परान्दा बांधा जाता है। बारात को निश्चित दिन पर उसी रास्ते से, जहां कार पूजी जाती है या ब्याह गणा जाता है कन्या के यहां जाना होता है। उसी शाम को दोनों पक्षों के यहां गांव के लोग इकट्ठे होकर उत्सव मनाते हैं। स्त्रियां रात को गाना गाती हैं। वर और कन्या के हाथों में भी 'मौली' या परान्दा बांध कर उनका मुंह

मीठा कराया जाता है । गांव की स्त्रियां उस दिन के पश्चात विवाह के दिन तक प्रत्येक रात्रि को गाने गाती रहती हैं जिन्हें 'बधावा गीत' कहा जाता है । इस दिन से दोनों पक्षों के यहां विवाह की तैयारियां पूरे जोर शोर से आरम्भ हो जाती हैं । वर और कन्या को उसी दिन से सभी गांव वाले बारी बारी से अपने यहां भोजन के लिए आमन्त्रित करते रहते हैं और उन्हें घी के चुल्लू व शक्कर आदि खूब खिलाते हैं । इसे ये लोग 'लड़होज देना या पिलाना' कहते हैं । यह उस दिन तक होता रहता है जिस दिन लड़के या लड़की का मामा नधार बन कर न पधारे क्योंकि आखिरी लड़होज मामा की ओर से दिया जाता है जो 'शान्त' या 'शान्ति' की रस्म के समय दिया जाता है ।

बारात के जाने के एक दिन पहले सायंकाल को सारे सम्बन्धी आ जाते हैं । इसे 'नधार आना' कहते हैं । इन सभी सम्बन्धियों को कार पूजने के बाद से ही नाई अथवा स्वयं लड़के व लड़की के माता पिता या भाई निमन्त्रित करना आरम्भ कर देते हैं । मुख्य निमन्त्रण मामा को दिया जाता है जिसे लड़के अथवा लड़की के माता पिता गुड़ की भेली लेकर उसके यहां जाकर देते है और नधार वाले दिन वही मुख्य नधार माना जाता है । नाई निमन्त्रण देते समय सभी सगे सम्बन्धियों के घर में हल्दी मिले थोड़े थोड़े चावल भी देता रहता है । विवाह के इस निमन्त्रण का बड़ा महत्व होता है तथा इस को बड़ा आवश्यक समझा जाता है। इसपर सिरमौर में एक लोकोक्ति भी कही जाती है जिसे 'पीवले चावल् लोई री बलावणा' कहा जाता है। जिसका अर्थ होता है जरूर ही या परम आवश्यक निमन्त्रण देना । कार पूजने अथवा इस प्रकार के निमन्त्रण का एक और भी महत्व है कि ऐसा करने के पश्चात विवाह आवश्यक किया जाएगा भले ही इसके पश्चात दोनों घरों में कोई दुःखद घटना जैसे किसी घर के सदस्य की या सगे सम्बन्धी की मृत्यु ही क्यों न हो जाए । निमन्त्रित सम्बन्धी अपने साथ घी से भरा हुआ एक बरतन 'ध्वालू' भी लाते हैं और मामा तो एक समय की धाम का सामान तथा लड़के व लड़की को नए कपड़े व अन्य उपहार भी साथ लाता है जिस के कारण अगर वह चाहे तो अपनी बरादरी के कुछ मनुष्यों को भी नधार ला सकता है भले ही लड़के या लड़की के सम्बन्धियों ने उनको नहीं भी बुलाया हो । ये सब बाते सामर्थ्य के अनुसार ही की जाती हैं ।

मामा के इस प्रकार नधार पहुंचने पर उसका तथा उसके अन्य साथियों का स्वागत लड़के अथवा लड़की के माता पिता आंगन में करते हैं । उसके तथा उसके साथियों के माथे पर रोली का टीका लगाया जाता है और उनकी खूब आवभक्त की जाती है । इस रस्म को टीका करना कहते हैं । उसी रात्रि को लड़के/लड़की की शान्त या शान्ति की रस्म भी होती है जिसमें मामा उन्हें लड़होज पिलाता है तथा अपने द्वारा लाए गए कपड़े पहनाता है अथवा अन्य उपहार देता है । सिरमौर में लड़के का सामान्यतया उपनयन या जनेऊ पहनाने का संस्कार भी शान्त के ही अवसर पर कराया जाता है । इस अवसर पर स्त्रियां इस समय के गीत गाती हैं तथा बाजे बजाए जाते हैं । शान्त से

पहले वर अथवा कन्या को उबटन मल कर नहलाया जाता है। ऐसा पण्डत के कहने के अनुसार तीन, पांच या अधिक से अधिक सात बार किया जाता है जो वर अथवा कन्या के विवाह के ग्रहों के अनुसार निश्चित किया जाता है।

दूसरे दिन प्रातः सेहरा बान्धा जाता है। नवेता या 'निऊदा' सेहरे पर ही सभी सगे सम्बन्धी नकद रुपए के रूप में इसी समय लगाते हैं जो सम्भवतः जितने जिसने पहले उस के यहां लगाए हों उससे दुगने लगाए जाते हैं। साधारणतया पहले यह एक या दो रुपए ही होते थे। इस के पश्चात् मामा की ओर से धाम होती है परन्तु लड़की की धाम मामा बारात के पहुंचने पर अकसर सायंकाल को देता है जबकि लड़के की धाम बारात के रवाना होने से पहले ही प्रातःकाल दे दी जाती है। धाम के पश्चात् लड़के की बारात रवाना हो जाती है जो पैदल ही तीन चार घण्टों में या दूरी के अनुसार सायंकाल से पहले लड़की वालों के यहां पहुंच जाती है। सिरमौर में पहले यातायात की कमी या दुर्गमता के कारण सम्बन्ध प्रायः निकटवर्ती गावों में ही किए जाते रहे जो कहीं कहीं अभी भी देखने में आते हैं। लड़के की बारात का क्रम कुछ ऐसा होता है सबसे पहले ग्राम देवता या कुल के देवता के निशान या झण्डे वाले, उस के पीछे धौंसा या नक्कारे वाले फिर अन्य बाजे वाले जो लगभग स्थानीय होते है जैसे शहनाई, करनाले, अरण सिंगा या डफड़े आदि फिर वर की पालकी—ऊंची जाति (स्वर्ण) के वर पालकी में जाते हैं जबकि अस्पृश्य जाति के वर पैदल चलते हैं-फिर मामा की पालकी और इस के बाद बाराती और सबसे पीछे सामान उठाने वाले बेगारी जो बारातियों के बिस्तरों तथा अन्य बैठने उठने और रोशनी आदि का सामान लिए होते हैं। रास्ते में जिन जिन गांवों से बारात गुजरती है उनकी स्त्रियां एकत्र होकर बारात के स्वागत के गीत गाती रहती हैं जिसके बदले में उन्हें एक गुड़ की भेली तथा पीने के लिये तम्बाकू आदि भी दिया जाता है। दूसरे दिन बारात की वापसी पर भी ये स्त्रियां इसी प्रकार गीत गाती हैं तथा कन्या को अपनी ओर से नकदी के रूप में उपहार भी देती रहती हैं।

कन्या के यहां बारात के पहुंचने पर कन्या पक्ष वाले बारात का स्वागत करते हैं। वे गांव के निकट से वर की पालकी को अपने कन्धों पर उठा लेते हैं। फिर बारात को बिठाकर 'मिलणी' की रस्म की जाती है और वर झण्डा छूने कन्या के द्वार पर जाता है। इन सारी रस्मों के समय स्त्रियां बराबर गीत गाती रहती हैं। सप्तपदी अथवा फेरे की रस्म प्रायः रात को ही शुभ महूर्त में की जाती है। दूसरे दिन प्रातः वरपक्ष वाले कन्या के लिए गहने कपड़े आदि भेंट के रूप में देते है जिसे वरी की रस्म कहते हैं। इस बीच वर के लिए अन्य छोटी मोटी रस्मे भी करने की होती हैं जैसे नीमा खाना, कन्या के कंघी लगाना आदि। फिर बारात को रोटी खिलाकर वापिस भेज दिया जाता है। स्वर्ण कन्याएं बहुधा डोले में बिदा की जाती है जबकि अस्पृश्य जाति की कन्याएं छोटी छोटी डोलियों में विदा की जाती हैं। विदाई के समय कन्या के डोले को कुछ दूर तक उस

के मामे या नानके वाले अपने कंधों पर उठाकर कन्या विदा करते है। बारात प्राय: पहले दिन वाले क्रम से ही लौटती है परन्तु आज मामे की पालकी सबसे आगे उसके पश्चात् वधु का डोला फिर वर की पालकी होती है। वधु के साथ उसके मायके से भी कुछ लोग जाते हैं जिनमें अधिकतर युवा या उसके भाई होते हैं इन्हें 'सोबड़ू' कहा जाता है। वर के यहां बारात के लौटने पर उसी दिन प्राय: गो धूली के समय वधु प्रवेश होता है। रात को धाम का भी आयोजन होता है।

चौथे दिन प्रात: अन्तिम धाम होती है। इस दिन की मुख्य रस्म 'छांयजली रा पाणी' अथवा कन्या का गांव के जलाशय से परिचय और वहां से पानी लाकर घर के सभी लोगों को बारी-बारी से पिलाना होता है। इस दिन की धाम को 'उनड़दी धाम' कहा जाता है। जिसे खाकर सब सगे सम्बन्धी अपने अपने घरों को लौट जाते हैं।

गिरीपार में विवाह उक्त ढंग से नहीं किए जाते। यहां 'झाझड़ा' अथवा 'हार' का रिवाज ज्यादा है। इन में फेरे अथवा सप्तपदी नहीं की जाती। झाझड़ा के लिए पण्डत द्वारा पहले से दिन निश्चित कराया जाता है। इस दिन वर का पिता तथा कई निकट सम्बन्धी ब्राह्मण, नाई तथा गांव के एक प्रमुख व्यक्ति तथा सम्बन्धियों के साथ कन्या के लिए सोहाग—एक नथली तथा अन्य गहने व कपड़े आदि लेकर सायंकाल को कन्या के यहां चले जाते हैं। वर स्वयं उनके साथ नहीं जाता। दूसरे दिन पण्डत एक शुभ महूर्त में उक्त सोहाग—नथली तथा कपड़े आदि को—मन्त्रोचारण के साथ कन्या को पहना देता है। इस समय पूजा करते हुए गांव की स्त्रियां विवाह गीत गाती रहती हैं। समस्त उपस्थित जनों को गुड़ या शक्कर बांटी जाती है। पुन: भोजन करने के पश्चात् आए हुए समस्त जन कन्या के साथ वर के घर की ओर प्रस्थान करते हैं। इस समय बाजे आदि भी उनके साथ होते हैं। ऐसी दशा में कन्या डोले में नहीं बिठाई जाती, वह भी पैदल ही चलती है। क्योंकि लोगों का विचार है कि केवल रुग्ण होने की अवस्था अथवा मृत्यु पश्चात् ही मनुष्य पलकी आदि में उठाकर ले जाया जाता है। ऐसी दशा में कन्या के साथ उसके गांव वालों या सम्बन्धियों 'सोबुड़ओं' आदि की संख्या भी काफी होती है। कभी कभी तो यह संख्या सैंकड़ों तक भी होती है। वर के यहां पहुचने पर घरासणी की जाती है जिसमें वर उपस्थित रहता है। इस समय ही पण्डत उन दोनों से इकट्ठा पूजन कराता है। दूसरे दिन सब सगे सम्बन्धियों को धाम दी जाती है। कन्या पक्ष वालों को तो कभी दो या तीन धामें भी खिलाई जाती हैं। ऐसी अवस्था में एक धाम मांस और चावल की होती है और दूसरी मिष्टान्न की। परन्तु यदि कन्यापक्ष वालों ने कन्या के लिए कोई धन आदि लिया हो तो उनकी इतनी आवभक्त नहीं होती।

'हार' की दशा में वर पहले ही कन्या को उसके घर या सम्बन्धियों के घर से अथवा किसी मेले या उत्सव आदि से भगाकर अपने साथ ले जाता है। फिर पता लगने पर वर पक्ष से वर के पिता तथा सम्बन्धी या गांव के कुछ लोग लड़की के माता पिता के पास इस बात की पुष्टि करने

जाते हैं कि अमुक लड़का उसकी पुत्री को हार कर (भगा कर) ले गया जिस पर वह अपने भाईचारे के कुछ व्यक्तियों को एकत्र करके लड़के के लिए 'दण्ड'—जुर्माना—नियत करते हैं जो एक बकरे और नकदी की शक्ल में होता है, लड़के के सम्बन्धी अदा करना मन्जूर कर लेते हैं। अब लड़की वापिस बाप के घर में चली आती है और फिर उपरोक्त भान्ति से उन का झाझड़ा कर दिया जाता है। वास्तव में यह असुर प्रकार का विवाह ही होता है जो कन्याओं को जबरदस्ती उठाकर ले जाते थे। यह उस का कुछ सुधरा हुआ रूप प्रतीत होता है।

प्रत्येक प्रकार के विवाह की अन्तिम रस्म 'गेरनुफेरनू' होती है जो मैदानी क्षेत्र के विवाह के पश्चात् होने वाली 'गौणा' रस्म के समान प्रतीत होती है। विवाह अथवा झाझडे के अन्तिम दिन या अन्य किसी दिन वर, उसका पिता तथा कन्या, गांव के एक दो अन्य प्रमुख व्यक्तियों, के साथ कन्या के यहां दोबारा जाते हैं और वहां दो एक दिन ठहरने के पश्चात् वापिस लौट आते हैं। इस समय इनके साथ कन्या पक्ष के बड़े बूढ़े भी होते हैं जिनकी वर पक्ष वाले बड़ी आवभक्त और स्वागत करते हैं तथा उन्हें स्वादिष्ट भोजन खिलाते हैं।

सिरमौर के पहाड़ी क्षेत्र विशेषकर तहसील रेणुका तथा पच्छाद के विवाह में बकरे आदि के मांस का प्रयोग भी साधारणतया किया जाता है जो पहले तो कन्या पक्ष की ओर ही अधिक होता है वैसे यह रस्म अब कम होती जा रही है और इसका स्थान मिष्ठान्न ले रहे हैं।

बहुपत्नी विवाह

यह प्रथा लगभग सारे सिरमौर में प्रचलित है। एक पति के कभी कभी दो या अधिक पत्नियां भी होती हैं। कभी कभी इन संख्या तीन, चार या पांच तक भी चली जाती है। कृषि तथा अन्य घरेलू कार्यों में अधिक परिश्रम करके जीवन यापन करना तथा ऐसे कार्यों के लिए मजदूरों की कमी इसका एक प्रमुख कारण है। 'दोचियों' अथवा दूसरे गावों में आवासों का होना भी इस का एक मुख्य कारण है। सिरमौर में स्त्रियां अन्य पुरुषों के साथ रगोड़ने, निराने तथा बोझ उठाने, लकड़ी तथा घास काटने का कार्य भी करती हैं जैसेकि अन्य पहाड़ी क्षेत्रों में किया जाता है। ये सब कार्य उनके अपने स्वयं के स्त्रियां द्वारा किए जाने वाले कार्यों जैसे छाछ बिलौना, रोटी बनाना, चक्की पीसना अथवा तकली से ऊन आदि कातना या चर्खा चलाने के अतिरिक्त उन्हें करने पड़ते हैं। यहां स्त्रियां ही अधिकतर बावड़ियों से पानी लाती हैं कभी कभी धाय का कार्य भी करती हैं। वे इस प्रकार परिवार के लिए अतिरिक्त आय का साधन जुटाती रहती है। यदि पहली पत्नी के कोई सन्तान न हो अथवा केवल पुत्रियां ही हों तब भी पुरुष दूसरी या तीसरी पत्नी ले आता है। परन्तु ऐसी दशा में वह पहली पत्नी की बहन, भतीजी अथवा किसी अन्य

निकट सम्बन्धी स्त्री से ही विवाह करता है जिसे पहली पत्नी स्वयं चुनती है और स्वयं अपनी सौत बनाकर ले आती है। दूसरी पत्नी रीत, झाझडा या कभी कभी पुनर्विवाह करके लाई जाती है।

दूसरी पत्नी के आने पर पहली पत्नी से उसका परिचय कराने के लिए 'सौकण मिलावा' अवश्य कराया जाता है। नई लाई गई पत्नी कमरे के कोने में बिठा दी जाती है। पहली उस के सामने वाले दूसरे कोने में बैठ जाती है। फिर दो अन्य स्त्रियां उन दोनों के समीप अपने अपने हाथों में एक एक जलता हुआ दीवा लेकर खड़ी हो जाती हैं। घर के मध्य में ब्राह्मण अथवा कोई अन्य वरिष्ठ स्त्री होनी चाहिए। बीच में एक चौड़ा कपड़ा अथवा कम्बल तानकर रखा जाता है। तब वे दोनों बैठी हुई स्त्रियां आहिस्ता आहिस्ता चल कर मध्य में खड़े ब्राह्मण तथा उस ताने हुए कपड़े की ओर बढ़ती हैं। दीवे वाली स्त्रियां भी उनकी ओर चलती रहती हैं। मध्य में खड़ा ब्राह्मण अथवा स्त्री कम्बल के आर पार से उन दोनों के हाथ पकड़ कर मिला देता है। वे अपने हाथों में पहले से ही चांदी के एक एक रुपये को पकड़े रहती हैं। उन रुपयों को वे हाथ मिलाते समय बदल देती हैं। लैम्प दोनों ओर इसलिए जलते रहते हैं कि एक पर दूसरे की परछाईं न पड़ने पाए। इस के पश्चात् उपस्थित लोगों में शक्कर अथवा गुड़ बांटा जाता है। इस बीच दूसरी स्त्रियां मंगल गीत भी गाती रहती हैं।

रीत

रीत का शाब्दिक अर्थ है रिवाज अथवा रस्म। यह प्रथा लगभग पूरे क्षेत्र में पाई जाती है। पत्नी द्वारा अपना पूरा मूल्य पति को चुका कर अथवा उसके विधवा हो जाने की दशा में पति के किसी निकट सम्बन्धी को रीत की रकम देकर उसका किसी दूसरे के घर में पत्नी बन कर चले जाना यहां वैधानिक रूप से उचित समझा जाता है। रीत के लिए दो बातों का होना आवश्यक होता है, एक तो पति द्वारा पत्नी को छोड़ने की सहमति और दूसरे उसे उचित राशि का दिया जाना। यह कार्य पत्नी का पिता, भाई अथवा कोई निकट सम्बन्धी पहले ही पूरा करके पति से सम्बन्ध विच्छेद की रसीद बनवा लेता है। ज्यों ही यह लिखत बन जाती है पत्नी दूसरे के यहां पुनः पत्नी बनकर जाने के लिए स्वतन्त्र हो जाती है। पति भी इसी प्रकार पहली पत्नी को रीत लेकर उसे छोड़ने पर दूसरा विवाह करने अथवा रीत देकर दूसरी पत्नी लाने के लिए स्वतन्त्र हो जाता है। पति तो पहली पत्नी के होते हुए भी दूसरा विवाह कर सकता है अथवा रीत दे कर दूसरी पत्नी लाने के लिए स्वतन्त्र हो जाता है परन्तु पत्नी जब तक पहले पति से लिखित रूप में छुटकारा प्राप्त न करले ऐसा नहीं कर सकती। वह एक पति के होते हुए दूसरे के घर में पत्नी रूप में नहीं जा सकती जब तक कि वह रीत देकर लिखित रूप में पति से सहमति प्राप्त न कर ले।

रीत देते समय यदि पत्नी गर्भवति हो तो गर्भ का शिशु पहले पति का ही होता है। यदि पति चाहे तो ऐसे शिशु को छोड़ सकता है। ऐसी दशा में होने वाला पति ही भावी सन्तान का पिता समझा जाता है। परन्तु ऐसी स्त्री की रीत की राशि कुछ बढ़ जाती है। रीत दे कर जाने वाली पत्नी के पहले पैदा हुए बच्चों को पहला पति ही ले लेता है। लोगों के विचार में यह प्रथा स्त्रियों तथा पुरुषों दोनों के चरित्रों को प्रभावित करती रहती है जिस का प्रभाव भावी समाज पर भी पड़ता रहता है।

बहुपति विवाह

यह प्रथा सिरमौर क्षेत्र की रेणुका तहसील में ही मुख्यतः प्रचलित है। यहां पर यह अधिकतर कृषक कुटुम्बों में प्रचलित है। इसके अनुसार तीन चार भाइयों अथवा कम से कम दो भाइयों की एक ही पत्नी होती है। इसीलिए यहां इसे 'जोड़ीदारी प्रथा' भी कहा जाता है। यहां लोगों में किम्वदन्ती है कि यह प्रथा कौरव पाण्डव के काल से ही यहां पर प्रचलित है और उसी का अनुकरण है। यदि भाइयों की सख्या कुछ अधिक हो तो स्त्रियां भी दो या अधिक लाई जाती हैं जिन्हें दो दो या तीन तीन भाइयों के मध्य बांट दिया जाता है। तब प्रत्येक स्त्री या भाइयों की जोड़ी कहलाती है और भाई भी आपस में जोड़ीदार कहलाते हैं। प्रत्येक स्त्री अपनी जोड़ी के भाइयों के साथ रहती है तथा इसका वह कठोरता से पालन करती है। वह दूसरा विवाह तो कर सकती है परन्तु उसी घर में रहते हुए अपनी जोड़ी नहीं बदल सकती। लोगों के विचार में यह प्रथा कुटुम्ब के बंटवारे भी बचाए रखती है। वैसे भी पहाड़ में कृषि योग्य भूमि बहुत थोड़ी होती है। अत: यह इस प्रकार भूमि को और अधिक छोटे छोटे टुकड़ों में बंटने से बचाए रखती है। इस का एक और लाभ औलाद का कम होना भी होता है और स्त्री भी वैधव्य से बची रहती है जब तक कि जोड़ी का एक भी भाई जीवित रहे। ऐसे कुटुम्बों में पिता की मृत्यु के पश्चात सबसे बड़ा भाई कुटुम्ब का मुखिया माना जाता है। वही सारे घर का प्रबन्धक भी होता है। सभी छोटे भाई अपनी आय भी उसी को देते रहते हैं। घर का सभी लेन देन इकट्ठा ही रहता है। किसी का अलग स्वामित्व नहीं होता। सभी की जिम्मेवारी भी सांझी ही रहती है। स्त्री से सबसे बड़े भाई का सम्पर्क अधिक रहता है। बाकी दूसरे भाई कार्यवश इधर उधर रहते हैं। सभी भाई आपस में बड़े सयंम तथा सहिष्णुता से रहते हैं। ये आपस में किसी प्रकार की ईर्षा तथा द्वेष नहीं रखते। न ही इन में इस कारण कोई झगड़ा आदि उत्पन्न होता है।

विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध

गिरीपार के लोग सगे मामा तथा चाचा की पुत्री के अलावा सबसे विवाह कर लेते हैं। ब्राह्मण तथा राजपूतों (कनैतों तथा भाटों) में विवाह सम्बन्ध होता रहता है। परन्तु इनका अन्य

तथा कथित अस्पृश्य जातियों से विवाह सम्बन्ध नहीं हो सकता । यदि कोई ऐसा करे तो उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है । यह 'छिगयाणा' या 'छीगणा' कहलाता है । यदि कोई अनजाने में कथित अस्पृश्य जाति के मनुष्य के साथ उठे या बैठे और उसके हाथ का छुआ खाना खा ले तो उसे दोबारा जाति में मिला लिया जाता है यदि वह भविष्य में पुनः ऐसा न करने के लिए पंचायत से क्षमा मांग ले । परन्तु यदि कोई जानबूझ कर ऐसा करे तो उसे दोबारा जाति में शामिल होने के लिए बड़ी बाधाओ तथा कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । ऐसे मनुष्य को दोबारा जाति में सम्मिलित करने का अधिकार केवल पंचायत या भाईचारे को ही होता है । ये लोग इस के लिए दूसरी खेलो (भाईचारों) से परामर्श करते हैं । अपराधी को इसके लिए गंगा में या किसी अन्य तीर्थ स्थान में नहाने को भी भेजा जाता है । इसके लिए उसे भाईचारे को एक बड़ी धाम (भोज) भी देनी पड़ती है । एक बकरा भी खेल के सामने भेंट करना पड़ता है । जिसे वे काट कर खाते हैं । अन्यथा वह उसी तथाकथित अस्पृश्य जाति में सम्मिलित हो जाता है जिसके व्यक्ति या स्त्री के साथ वह बैठा उठा हो या जिनके हाथ का उसने खाना खाया हो ।

दहेज

सिरमौर में दहेज बहुत ही कम या न होने के बराबर है । दहेज केवल नवविवाहिता को ही दिया जाता है । यह कुछ कपड़े चांदी के ज़ेवर या बरतनों के रूप में दिया जाता है जिनका मूल्य दो चार सौ रुपए ही होता है । घेरनुफेरनु के समय लड़की को एक दो पशु (गाय या भैंस) भी दिए जाते हैं । दहेज की कमी का एक कारण विवाह विच्छेद भी कहा जा सकता है ताकि रीत के समय कोई झगड़ा न हो । विवाह में सम्मिलित सम्बन्धी लड़की को अपनी शक्ति के अनुसार कपड़े बर्तन या नकदी भी उपहार रूप में देते हैं । यह साधारणतया एक चुन्नी (ओढ़नी) और एक रुपया होता है । लड़की के माता-पिता को यह भेंट उन सम्बन्धियों की लड़कियों के विवाह में वापिस करनी पड़ती है जो कि आवश्यक होती है ।

गांव० व० डाक० सरांह
ज़िला सिरमौर (हि० प्र०)

एक समीक्षा

मण्डियाली में प्रकाशित पद्यसाहित्य

□ डॉ० नीलमणि उपाध्याय

मण्डियाली पश्चिमी पहाड़ी की बोलियों में केन्द्रिक स्थान रखती है तथा मण्डी जनपद प्राचीन काल से वाणिज्य-आवागमन का केन्द्र रहा है। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि मण्डियाली रियासत के ज़माने में न केवल राजकाज, वाणिज्य व दैनिक व्यवहार की भाषा रही है बल्कि ललित व सरस गद्य-पद्य साहित्य की भी वाहन रही है। बोली का 'बोली' रूप प्रधान होने के कारण इसका बहुत सा साहित्य अप्रकाशित अधिक है तथा विरल ही प्रकाशित हुआ है। कारण स्पष्ट है कि पाठकों की सीमित संख्या तथा मुद्रण की बढ़ती कीमत। फिर भी यदा कदा उत्साही व मण्डियाली बोली के प्रति प्रतिबद्ध साहित्यकार व कवि अपनी रचनाओं को फुटकर व पुस्तकाकार प्रकाशित करते रहे हैं।

खड़ी बोली के व्यापक वर्तमान प्रयोग से पहिले इन पहाड़ी प्रदेशो में उर्दू-फारसी के साथ साथ ब्रज का भी बहुत प्रयोग रहा है। उर्दू फारसी तो मुगल बादशाहों के प्रभाव व अनुकरण तथा सम्पर्क भाषाओं के रूप में प्रयुक्त होती रही हैं परन्तु जहां तक रागात्मक व सरस भावाभिव्यक्ति का प्रश्न रहा है व्रज की रसमाधुरी की ओर यहां के काव्य-स्रष्टा भी प्रवृत्त रहे हैं। फिर भी जो आत्मीयता, हार्दिकता तथा तादत्म्यता अपनी बोली में रहती है और जो किसी भी काव्य-कृति की प्राण-प्रेरणा होती हैं वह किसी अन्य भाषा व उपभाषा में सम्भव नहीं। सरस काव्य के रूपमें मण्डियाली पद्य-साहित्य की इस विशेषता को भी हमें सदा दृष्टिपथ में रखना चाहिये।

प्रकाशित पुस्तकें : हम मण्डियाली के प्रकाशित पद्य-साहित्यान्तर्गत प्रथमतः प्रकाशित पुस्तकें तथा द्वितीयतः फुटकर रचनाएं ले सकते हैं। जहां तक प्रकाशित पुस्तकों का सम्बन्ध है एक नाम सर्वोपरि है — वह है वयोवृद्ध कवि व साहित्यकार पं० भवानीदत्त शास्त्री का। पचास से भी अधिक वर्षों से ये साहित्य-सृजन में प्रवृत्त रहे हैं। इन्होंने मण्डी नगर में संस्कृत व गीता के अध्ययन, अध्यापन, हिन्दी के प्रचार-प्रसार, चित्रकला, नाट्यकला व सांस्कृतिक गतिविधियों के साथ-साथ मण्डियाली कविता की भी श्रीवृद्धि की है। इनका प्रकाशित मण्डियाली पद्य-साहित्य

भी आर्थिक कठिनाईयों से जूझता हुआ इनके लिखित अप्रकाशित काव्य का एक अंश मात्र ही है। अप्रकाशित पद्य-साहित्य में गीता का मण्डियाली अनुवाद भी है जो इन्होंने 1962 में सम्पूर्ण कर लिया था। इसके साथ ही ईशावास्योपनिषद् व केनोपनिषद् के पद्यानुवाद हैं तथा इनके द्वारा रचित पचास से भी अधिक पहाड़ी गाने भी हैं।

पं० भवानीदत्त शास्त्री की प्रकाशित रचनाएं निम्नलिखित हैं :

(1) 'भजगोविन्दम्' का मण्डियाली पद्यानुवाद
(2) 'गीता मृतम्'—श्रीमद् भगवद्गीता के अठारह श्लोकों का मण्डियाली में पद्यानुवाद
(3) हिम कुसुमाञ्जलि—कविता संग्रह

'भजगोविन्दम्' श्री शंकराचार्य जी के 'चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्' का मण्डियाली में पद्यानुवाद है। 'भजगोविदम्' नाम इस स्त्रोत के ध्रुवपदम् 'भजगोविन्दम् भज गोबिन्दम् भज गोबिन्दं मूढ़मते, प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृम् करणे' से लिया है। इसमें न केवल 'चर्पटपञ्जरिका-स्तोत्रम्' बल्कि श्री शंकराचार्य द्वारा विरचित 'द्वादशपञ्जरिका स्तोत्रम् से भी कुछ श्लोक लिये गये हैं।

यह तो निश्चित ही है कि श्री शंकराचार्य के ये तथा अन्य स्तोत्र कविता की दृष्टि से भी उतने ही ऊंचे तथा सरस हैं। इनके दर्शन व वैराग्य के साथ साथ इनका इनका काव्यत्व भी बड़ा प्रखर है। काव्य तथा दर्शन का यह मणि कांचन योग दुर्लभ ही है। अतः पं. भवानीदत्त शास्त्री द्वारा पद्यानुवाद के लिये पद्य संस्कृत काव्यत्व की दृष्टि से उतने ही समृद्ध हैं। अतः पद्यानुवाद में भी काव्य की वही उच्चता, सरसता तथा दिव्यता बनी रहे यह परमावश्यक होता है। इस दृष्टि से ऐसी कविता का पद्यानुवाद अपने आप आप में चुनौती है। तभी तो जो कवि के साथ साथ कब गहरी अध्यात्मक भावना से युक्त हो वही इनके पद्यानुवाद का अधिकारी हो सकता है।

वयसि गते कः कामविकारः, शुष्के नीरे कः कासारः। क्षीणे वित्ते कः पाखिरो ज्ञाते तत्वे कः संसारः' का पद्यानुवाद देखिए :

ज्वानी चली जाणे पर कांमा रा विकार क्या ?
पाणी सुकी जाणे पर सरा रा नांव क्या ?
धन घटी जाणे पर टब्बरता टांडा क्या ?
तत्त्व जाणी लैणे पर संसार दा क्या ?

इसमें परिवार का 'टब्बर ता टांडा' अनुवाद ठेठ मंडियाली है तथा भाव प्रेषणीयता से युक्त है। 'कासारः' का 'सरा रा' अनुवाद भी ठीक हुआ है क्योंकि मंडियाली में सर बहुप्रचलित है

तथा अपना विशिष्ट अर्थ रखता है। हां 'काम' का 'कामा' में कार्य अर्थ की ध्वनि अधिक है पुरुष-स्त्री की परस्पर रति व आसाक्ति की कम है मात्र पूर्वांश 'ज्वानी चली जाणे पर' ही मूलार्थ स्पष्ट होता है।

यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्ताव न्निजपरिवारो रक्तः।
पश्चाद्यावति जर्जरदेहे वार्ता पृच्छति कोऽपि न गेहे॥

का प्रस्तुत पद्यानुवाद मण्डियाली की सरीक शब्दावली व मुहावरे से युक्त है :

जों तका धन जोड़ी जोड़ी कमान्दा रैंहया,
तौं तका तेरे परिवारा रा भी प्यार रैंहया।
जेबे हुआ खपरा ढिढली री देहावाला,
कोई भी नी करे गल्ल घरां ओ नमाणेआ॥

यहां पर ठेठ मण्डियाली शब्द 'खपरा' 'ढिढली' 'नमाणेआ' आदि का प्रभावशाली ढंग से समावेश हुआ है तथा इससे भावभिव्यक्ति में भी बहुत सहायता प्राप्त हुई है।

'भजगोबिन्दम्' में पद्यानुवाद में अनुवादकर्ता ने ठेठ मण्डियाली के शब्दों का प्रयोग किया है तथा मूलभाव को सम्यक रूपेण सम्प्रेषित किया है। मूल पद्यांशो में अक्षर विन्यास की अशुद्धियां बहुत खटकती हैं यथा 'नारी स्तनमरनाभी देशं, दृष्टवा मा गा मोहा' वशम्। एतन्मांस व सादि विकारं मनसि विचिन्तय वारं बारम्'। इसका मूल श्लोक अशुद्ध मुद्रित हुआ है। अक्षर भी आगे पीछे हो गये हैं। समस्तपदों को भी व्याघात पहुंचा है। आशा है कि अगले संस्करण में अक्षर-विन्यास व अन्य अशुद्धियों को संशोधित करके प्रकाशित किया जायेगा।

'गीतामृतम्' तथा

'हिम कुसुमाम्जलि' पं० भवानीदत्त शास्त्री की अन्य प्रकाशित रचनाएं है। 'हिम कुसुमाम्जलि' के सत्यं परं धीमहि' 'मानवता' 'हिमाचलः' 'निर्झरः' 'मण्डी नगरम्' आदि शीर्षकों से संस्कृत पद्यांशों का मण्डियाली रूपान्तर भी साथ साथ दिया गया है। पहिले संस्कृत पद्य फिर पदान्वय तदनन्तर हिन्दी पद्यानुवाद तथा अन्त में मण्डियाली में पद्यानुवाद। 'कुलूत-दशहरा-महोत्सव' के संस्कृत पद्यांश 'सुरम्य-कुल्लू-नगरेऽति-पावने' का मण्डियाली पद्यानुवाद देखिए :

छैल होर पवित्र बड्डे कुल्लू रेता नारा च
लोक आपणे आपणे बाणे दे सैंहरेयां च आई के,
मौजा च बही के रात-ध्याड़ नांचाहि
लैहरां जिहयां ब्यासा री गांदी नाचादी रैंहां ही।

हिन्दी की निर्झर' कविता इनकी अत्यन्त प्रसिद्ध है तथा इनके 'साहित्य सदन' के कार्यक्रमों का प्रेरणा-गीत। यही बात संस्कृत कविता 'निर्झरः' में भी है ! 'पदाधिकारी निजदेश सेवकों आदि का पद्यानुवाद इसी तथ्य की और इंगित करता है :

अफसर लोक अभिमाना जो छाडी के देसा रे सेवक बणे;
व्यापारी लालच छाडी देवे हे श्रद्धावाले सम जणे।
माहणू जो माहणू बनान्दे जायां, फेरो खुशी खुशी बैंहदे जांया;
ठण्डे पाणी रे नालुआ मोया, बैंहदा बैंहदा वही जांया।

यहां कविता और नीति का भी समन्वय द्रष्टव्य है। कविता के द्वारा जन-प्रेरणा कवि को अभिप्रेत है तथा लगता है कि सांस्कृतिक पुनरुत्थान तथा सामाजिक कल्याण का उद्देश्य पं० भवानीदत्त शास्त्री को अभिप्रेत है।

यह तो स्पष्ट ही है कि पं० भवानीदत्त जी का काव्यक्षेत्र व्यापक है तथा शृंगार से अध्यात्म, लोक-परलोक, परिवार-नगर, विश्व, प्रकृति, ज्ञानतत्व, मानव, देव सभी तक विस्तृत है। इन्होंने मण्डियाली के उन शब्दों को जो अब कालकवलित होकर प्रयोग में लुप्तप्राय हो गये हैं उन्हें भावी पीढ़ियों के लिये काव्य में लिपिबद्ध कर सुरक्षित किया है। इनकी काव्य की दृष्टि से संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी व पहाड़ी सभी भाषाओं में गाते हैं अतः काव्यत्व इस प्रकार समृद्ध ही हुआ है। परन्तु समीक्षा करते हुए एक बात जरूर बार बार स्मरण हो आती है कि स्वतन्त्र मण्डियाली काव्य का समावेश यदि होता तो मण्डियाली पद्य-साहित्य की दृष्टि से उसका अपना स्वरूप होता तथा उसका आंकलन उसी आधार पर किया जा सकता था।

फुटकर रचनाएं : पुरानी मंडी के पं० शंकर द्वारा रचित 'बारहमासा' प्राचीन रचना है तथा दुर्लभ है। यह व्रजमिश्रित मंडियाली में लिखी गई है तथा यह प्रकृति-वर्णन, प्रणयानुभूति व विरहानुभूति से ओत-प्रोत है। जहां तक फुटकर कविताओं का प्रश्न है इस दिशा में कई कवि प्रयत्न शील है। सर्वश्री डॉ० कांशी राम, ओमचन्द हाण्डा, धर्मपाल कपूर, प्रकाशचन्द कपूर, स्वर्गीय मुन्शी नेत्रसिंह, हरवंस सिंह सेठी, कृष्ण कुमार नूतन, मोती लाल हाण्डा, मनसा राम शर्मा तथा इस पत्र के लेखक के नाम परिगणित किये जा सकते हैं।

राज्य भाषा संस्थान भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश, शिमला द्वारा प्रकाशित काव्य-धारा (२) में कुछ मण्डियाली कवियों की कविताएं संगृहीत हैं। पं० भवानीदत्त जी की कबिताएं 'शिव' 'भूल' 'मेरा देस' इसमे सम्मिलित की गई हैं। अन्य कवियों में श्री मनसा राम शर्मा की

'जय जय भारत' तथा देवियों रे मन्दरा च' कविताएं संकलित हैं। 'जय जय भारत' कविता राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत है। देवियों रे मन्दरा च' कविता स्वयं कवि के अनुसार व्यंग प्रधान कविता है। कवि कहता है :

देवियारे मन्दिरा च भगतां री भीड़ लगी,
भीड़ा बिच खड़े सब्बी इक्की पैरा भारे।
इक्की पुछेया होल्यां जहां कितने-क भगत ए
दुज्जे बोल्या अम्बरांच जितने-ए तारे॥

कविता कुछ व्यंग्य कुछ भक्तिभावना तथा कुछ ऐसे पर्वेपिर मेलों जैसी रंगीनी के चित्रण से युक्त है।

श्री मोती लाल हाण्डा की इस संग्रह में 'एहड़ी लगी मोया बरसात सौणा नीं देंदी सारी रात' 'गीदड़ी री चलाकी' तथा 'नौं बड़ा गांव छोटा' कविताएं समन्वित की गई हैं। विरह भावना वस्तुति देश से मुक्त 'इहड़ी लगी मोया बरसात सौंण। नीं देंदी सारी रात' कविता रोमांटिक भावनाओं की प्रतिनिधि है। 'गीदड़ी री चलाकी' पंचतन्त्र की ही कहानी का मण्डियाली पद्यानुवाद है, पर इसमें कुछ ठेठ तथा सार्थक मण्डियाली शब्द जैसे 'खुराटणी' 'फूली रा नानकू' 'लपोछदा' का प्रभावशाली प्रयोग किया गया। 'आंखों का अन्धा नाम नयनसुख' कहावत को चरितार्थ करने वाली तीसरी कविता 'नौं बड़ा गांव छोटा' है। प्रस्तुत पद्यांश इसी तथ्य को दर्शाता है :

धर्मचन्दे नीं कित्ता धर्म,
कर्मचन्दा रे फूटी रे कर्म;
रोशना रे घरा पईरा निहारा,
सुन्दरा री शक्ला पर बजीरे बारा।

इस संग्रह में अन्तिम मण्डियाली कवि हैं डॉ० कांशीराम। इनकी कवितायें 'हिमाचला री व्यासा' जां आसे जम्मे थे' 'ये छैल छैल धारां' सम्मिलित की गई है। 'हिमाचला री व्यासा' में व्यासा नदी का माहात्म्य वर्णित है। 'जां आसे जम्मे थे' में माता पिता द्वारा बच्चों के लालन-पालन के सन्दर्भ में किया गया त्याग-बलिदान व्यक्त हुआ है। 'ये छैल छैल धांरा' में पर्वतीय संस्कृति की पवित्रता व महानता तथा चरित्र-निर्माण की उनकी शक्ति का प्रकटीकरण हुआ है। यही ये शैलमालाएं तथा शैल पुत्र-पुत्रियां हमें शिक्षा भी देती हैं। कवि कहता है :

ये टेढ़े मेढ़े कवाल
ये गद्दी मित्र ग्वाल
गलाया करदे आसा सांही
भोले भाली बणी करी ज़िंदगी बिताओ।

मण्डियाली की फुटकर कविताएं राजकीय महाविद्यालय, मण्डी की वार्षिक पत्रिका 'विपाशा' में पहाड़ी विभागान्तर्गत प्रकाशित होती रही हैं तथा इनका सृजनात्मक स्तर भी ऊंचा रहा है।

मण्डियाली पद्य की छटा कभी मण्डी राजदरबारों के कवि-सम्मेलनों, बांठडों तथा जात्राओं में देखी जा सकती थी पर वह सब अब लुप्त होती जा रही है। जब तक हम उसी भाषा में सोच-विचार न करें अपना दैनिक व्यवहार न करें उसमें वह सहजता, प्रवाह व सृजनात्मकता नहीं आ सकती। लगता है कि वे दिन अब बीत गए 'ते ही नो दिवसः गतः' हमें फिर अपने चारों ओर मण्डियाली के चिन्तन-मनन का वातावरण बनाना होगा तभी मण्डियाली पद्य का मौलिक सृजन समुचित दिशा व गति प्राप्त कर सकेगा।

मकान नं० 32/10,
चौबाटा मुहल्ला,
मण्डी-175 001
(हिमाचल प्रदेश)

●

हिम संस्कृति

□ श्यामलाल

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

(ऋग्वेद १०, १२१, ४)

ऋग्वेद के मन्त्रद्रष्टा ऋषि हिरण्यगर्भ प्रजापत्य हिमसंस्कृति को देखकर आनन्दविभोर हो उठे थे। यज्ञ की आहुति प्रजापति को दें या किस देवता को दें। जिसने इस सुन्दर धरातल का निर्माण किया—जहां एक ओर हिमवान् की अपनी महिमा है और दूसरी ओर नदियों के पुण्य सलिल से पूर्ण सागर की अपनी गरिमा है। चारों दिशाएं और कोण मानो अपनी भुजाओं से मिल जुल कर संस्कृति का आदान प्रदान कर रहे हैं। शरत्काल में हिम से दूर दूर तक विस्तृत शील माला का संस्कार होता है। ग्रीष्म में सूर्य की आतप से पिघले हिमजल को नदियां पयस्वती प्रदिशाओं से होकर समुद्र तक पहुंचाती हैं। रसातल से यही जल वाष्प बन कर मेघ रूप धारण कर हिमपात और वर्षा रूप में पुनः हिम संस्कृति का आदान प्रदान करता है। ऋग्वेद (२,३२,९१) में इन्द्र और वृत्र के युद्ध के वर्णन में जलधारा का विमोचन प्रसिद्ध है :—

अपां बिलमपिहित यदासीद् वृत्रं जघन्वां अप तद् ववार् ॥

जब घन घोर वर्षा या गर्ज के साथ छींटे पड़ते हैं तो बिजली की चमक दमक से इन्द्र के वज्र का प्रहार कड़ाक्का प्रतीत होता है और घटाटोप में गर्जना से वृत का चीत्कार गड़ाक्का सुनायी देता है।

काव्य चमत्कार में वर्णित वायु और मेघ द्वारा आकाश और धरती के इस संस्कार में हिमवान् की प्रमुख भूमिका है। इसी लिए हिमवान् को महान् कहा गया है। महाकवि कालिदास ने अपनी प्रसिद्ध कृति कुमारसम्भवम् में इसे देवतात्मा नगाधिराज हिमालय कहकर प्रजापति सूक्त की ऋचा को हिमसंस्कृति के वर्णन में इस प्रकार श्लोक बद्ध किया है :—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधि वगाहय स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः । १,१ ॥

हिमसंस्कृति के वर्णन में हिमाचल प्रदेश के निवासी किन्नरों का वंशी-वादन प्रमुख है। किन्नरों की वंशी की तान छिड़ती है। कल्पना की जाती है कि बांस के छिद्रों को हिमालय अपनी गुहा वाले मुख से उत्पन्न वायु से मानो भर रहा है :—

यः पूरयन् कीचक रन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।
उद् गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवो पगन्तुम् ॥

(कुमार सम्भवम् १,८)

हिमधारा से कल कलवाहिनी नदियों ने वैदिक ऋषियों में कल्पना की ऊंची उड़ान संजोयी। हिमाचल से बहने वाली व्यास और सतलुज के संगम पर खड़े होकर महर्षि विश्वामित्र ने ऋग्वेद के प्रसिद्ध नदी सूक्त (३,३३) की रचना की जिसमें हिमसंस्कृति के अमर रूप की झलक पायी जाती है :—

प्र पर्वता नामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥

(ऋग्वेद ३,३३,९)

महर्षि विश्वामित्र राजा सुदास् के पुरोहित बने। उन्होंने यज्ञ कराया और बहुमूल्य धन पाया। धन लेकर जब वे व्यास और सतलुज के संगम पर पहुंचे तो उन्होंने पार पाना कठिन समझा। मार्मिक शब्दों में उन्होंने इन नदियों से प्रार्थना की—'मैं कुशिक का पुत्र आप को पुकार रहा हूं। आप घड़ी भर रुक जाओ। मुझे पार पाने दो।' इस ऋजा में हिमवान् से निकली व्यास और सतलुज के प्रवाह की तुलना वेग से दौड़ते दो घोड़ों और दो खेत गौओं से की है। एक दूसरे की चाह का सुन्दर वर्णन है।

इस प्रदेश की संस्कृति में वर्णित हिमद्रुम देवदारू के लहराते वृक्ष, नाचते पशु और उड़ारी भरते पक्षी मन को हर लेते हैं। महाकवि जयशंकर प्रसाद की अमर रचना कामायनी का आरम्भ भी हिमगिरि से है :—

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छांह,
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह।

और जहां देवदारू मानो तपस्वी बने हुए हैं :—

उसी तपस्वी से लम्बे थे
देवदारू दो चार खड़े,
हुए हिम धवल जैसे
पत्थर बन कर ठिठुरे रहे अड़े।

मनाली में मनु महाराज ने अपना धाम बनाया और स्वच्छ हिमधारा का पान कर मनुस्मृति की रचना की। यहीं से उन्होंने संस्कृति का नाद बजाया जो आज भी भारत में प्रतिष्ठित रूप में है :—

थी अन्त की गोद सदृश जो
विस्तृत गुहा वहां रमणीय ;
उसमें मनु ने स्थान बनाया
सुन्दर स्वच्छ और वरणीय।

इस प्रकार महाकवि जयशंकर प्रसाद ने कामायनी में हिम संस्कृति का रहस्यवाद दर्शाया:—

नीचे जल था ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन।
एक तत्त्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन॥

इसी हिमगिरि में महर्षि व्यास ने तपस्या की और व्यास आश्रम की प्रतिष्ठा की। दूर-दूर से लोग आज भी संस्कृति के प्रवाह को देखते के लिए व्यास कुण्ड के दर्शन के लिए मनाली होकर जाते हैं और व्यास नदी को उद्गम का आनन्द लेते हैं।

इन्हीं हिमशिखरों में हिम कन्या पार्वती की जीवन लीला का वर्णन मिलता है। उसका कर्णपूर यहीं गिरा था जहां मणिकर्ण तीर्थ स्थली बन कर उभर आया। मणिकर्ण के मार्ग पर भून्तर के पास पार्वती नदी का संगम व्यास नदी से होता है। दूसरी ओर मनाली से हिमाच्छादित शिखरों की ओर अग्रसर होते हुए वसिष्ठ आश्रम के दर्शन होते हैं। वहां उष्णधारा में स्नान करते समय महर्षि वसिष्ठ के मन्त्र और स्मृति अपनी संस्कृति के प्रति जागरूक करते हैं।

दूसरी ओर नाहन से हिमगिरि की ओर जाते हुए मानवकार रेणुका तीर्थ के दर्शन होते हैं जहां भगवान् परशु राम ने साधना की थी। रेणुका के सम्मुख उच्च शिखर पर जमदग्नि कुण्ड है। यह महर्षि जमदग्नि की तपोभूमि है।

महर्षि जमदग्नि की शासन प्रणाली का प्रचलन अभी भी हिमवान् के उच्च शिखरों में स्थित मलाणा में माना जाता है। यहां जमलू देवता की संस्कृति प्रचलित है। धर्मार्थकाम, मोक्ष चतुर्वग में संस्कृति की रेखा प्राचीन काल से देवता के नाम पर खींची चली आ रही है।

हिमालय के अनेक तीर्थ धाम—मणिमहेश, मानसरोवर, कैलाश आदि के वर्णन से हिम-संस्कृति के विविध आकार प्रकार के दर्शन अनेक लेखकों और कलाकारों ने कराये हैं।

लाहौल स्पीति में बौद्ध गुफाओं और मठों के दर्शन से हिमलीन बौद्ध संस्कृति के दर्शन सुलभ हैं। मण्डी में रिवालसर सरोवर में पद्मसम्भव मुनि के साथ लोमश मुनि का विराजमान होना हिम संस्कृति में समन्वय का विशिष्ट रूप है। गुरु गोविन्द सिंह ने भी इसी तप:स्थली को अपनाया। यहां का गुरुद्वारा एकान्त में स्थित है।

कांगड़ा के प्राचीन दुर्ग में जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा है। चामुण्डा में गुफा में शिव दर्शन और ऊपर मन्दिर में शक्ति दर्शन से शैव और शाक्त धर्म का मनोरम मेल है।

विष्णुपुराण में कुलिन्दो पत्यका का वर्णन मिलता है। कुलिन्दों का निवास सराहन और रामपुर बुशहर के आस पास हिमसंस्कृति का सुन्दर प्रतीक है। इसी प्रकार पुराणों और इतिहास ग्रन्थों में यक्ष, गन्धर्व, नाग, खश, कोल, किरात आदि का वर्णन है जिन्होंने हिमसंस्कृति का प्रसार विविध रूप में किया।

इस प्रकार आज का हिमाचल प्रदेश अपना मान लिये हुए है। यहां आचार विचार की रीति ही नहीं अपितु कला का उद्गम और विकास भी हुआ। अनेक मन्दिरों भवनों और दुर्गों का निर्माण हुआ। महाभारत कालीन संस्कृति से लेकर आजकल की संस्कृति के रूप यहां उपलब्ध हैं। पाण्डवों के वनवास की कथाएं यहां बहु प्रचलित हैं—जिनमें भीम और हिड़िम्बा का संवाद प्रमुख है। अन्यत्र हिड़िम्बा का राक्षसी के रूप में वर्णन है परन्तु इस प्रदेश में मनाली के पास हिड़िम्बा ढूंगरी देवी के रूप में एक प्राचीन मन्दिर में प्रतिष्ठित है। इस भूमि में राजस तामस वृत्ति वाले लोग पदार्पण करते ही सात्विक वृति अपनाकर देवत्व धारण कर लेते हैं। पाण्डवों ने यहीं से स्वर्गारोहण पर्व का आरम्भ किया था। प्राचीन भग्नावशेषों, दुर्गों मन्दिरों की विविध शैलियों में अनेक देवी-देवताओं की प्रतिष्ठा में हिम संस्कृति का संगम है। इस संगम के कारण ही यह प्रदेश देवभूमि कहलाता है।

चित्र कला में पहाड़ी शैली की ख्याती दूर दूर तक पहुंची। चम्बा शैली, कांगड़ा की चित्र-कला कुल्लू की वेशभूषा आचरण प्रसाधन हिम संस्कृति की विशेषता है। अनेक चितेरों ने इस संस्कृति का चित्रण किया। इसी शती में निकोलस रोरिक ने नग्गर कुल्लू में चित्र विथी बनाई।

सरदार शोभासिंह ने पालमपुर के समीप अन्दरेटा में हिम संस्कृति की चित्र शाला बनायी। कला पारखी आर्चर डा. महेन्द्रसिंह रन्धावा, डॉ. ब्रजेन्द्र नाथ गोस्वामी, राणा गोवर्धनसिंह, वैद्य किशोरी लाल आदि इतिहास और कला मर्मज्ञों ने हिम संस्कृति के सन्दर्भ में पहाड़ी चित्रकला पर प्रकाश डाला है। इस प्रकार हिम संस्कृति का गुणगान हिमधारा, हिमप्रस्थ, हिमभारती, हिमसुमन और हिमोत्कर्ष में सुलभ है। वर्णित विषयों में नारी नाची खनैटी, बांठड़ा आदि लास्य नृत्यों में हिम संस्कृति और समाज की तान और रंग रूप प्रदर्शित हैं। हिम शब्द से हिमधाम की हिमाभा देदीप्यमान है :—

हिमवान्, हिमधर, हिमकूट, हिमगिरि, हिमपुर, हिमधर, हिमाद्रि, हेमाद्रि एवं हिमाचल में सामाजिक प्रथा का बहुविध विस्तार हुआ जिसकी छाप जन्म मरण के संस्कारों में पड़ी। इसी संस्कृति में नामकरण संस्कार के उदाहरण मिलते हैं :—

हिमकर, हिमरुचि, हिमशुची, हिमरश्मि, हिमदीधिति, हिमज्योति, हिमछति, हिमगौर, हिमराज, हिमदास, हिमहास, हिमभानु, हिममित्र- हिमांक, हिमानी, हिमबाला, हिमांशु, हिमारूण, हेमावली आदि।

हिमखण्ड के दर्शन अनेक रूप में पाये जाते हैं—कैलाश, मणिमहेश अमरनाथ आदि में शिव-लिंग गण गौरी के दर्शन हिमरूप में वर्णित हैं। हिमपात, हिमबारि, हिमकणि, हिमाम्बु हिमोदक, हिमशीतल, हिमानिल आदि परम सुखावह हैं।

हिमोपचार का सुन्दर वर्णन मिलता है। हिमसंस्कृति में हिमगृह का विशेष स्थान है। हिमतैल कर्पूर सुगन्धित द्रव्य के रूप में है। हिमज्वर, हिमक, हिमिका, हिमेरू, हिमेलु, हिमार्त कष्ट विशेष शब्द हैं। आनन्द प्रदायी शब्द हैं :—

हिमाभ, हिमाभ्र, हिमशुभ्र, हिमदुग्ध, हिमविशद, हिमश्वेत हिमशर्करा आदि।

हिमागम में हिमर्तु, हेमन्त, ह्यून्द, ह्यूं का प्रचलन भी पूर्वापर संस्कृति का प्रतीक है।

हिमागम और हिमायगम के अवसर पर अनेक व्रत और उत्सव स्थान स्थान पर मनाये जाते हैं। इन उत्सवों में हिमसंस्कृति की झलक पायी जाती है। इनमें प्रसिद्ध उत्सव का वर्णन ब्रह्म-पुराण में मिलता है जिसका उद्धरण कृत्यरत्नाकर में श्री चण्डेश्वर ठक्कुर ने हिमपूजा विधान सहित पृ० ४७०-७१ में दिया है।

हिमपूजा पूर्णिमा को की जाती है। चन्द्र पूजन होता है। पुष्प दूध का नैवेद्य समर्पित किया जाता है। गौओं को लवणदान दिया जाता है। माता, बहिन और पुत्री का सम्मान रक्त वस्त्रों से किया जाता है। व्रती का हिम से सान्निध्य उत्तम कहा गया है। यदि व्रती हिम से दूर हो और हिम न मिल सके तो मधु, तिल और घी का पान करे परन्तु हिम शब्द का उच्चारण अवश्य करें :—

यस्मिन् देशे हिमं न स्यात् तत्र ब्रूयाद् हिमं हिमम् ।
घृतावर्तं ब्राह्मणेभ्यश्च देयं माषौदनं तथा ॥
उत्सवश्च तथा कार्यो गीतनृत्य समाकुल: ।
श्यामा देवी पूजितव्या पुष्पधूपानुलेपनैः ॥

इस प्रकार नाची, नाटी गायन वादन उत्तम खान पान द्वारा श्यामा देवी का पूजन कर हिमोत्सव मनाने का विधान है ।

हिमकन्या पार्वती लोकमाता के रूप में गौरी, चण्डी, कालिका, तारा आदि नामों से हिमाचल के अनेकों शिखरों में विराजमान है । भारत में दुर्गापूजा का विशेष महत्त्व है । इसमें हिमकन्या का गुणगान सतत किया जाता है । लोग दूर दूर से बहुविध उपहार लेकर हिमाचल में हिमजा के दर्शन करने आते हैं । इस प्रसंग में मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत देवीमाहात्म्य में कालिका वर्णन एवं है:-

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत् सापि पार्वती ।
कालिकेति समाख्याता हिमाचल कृताश्रया ॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ५,८८)

इस रूप में हिम संस्कृति का प्रसार हिमाचल से लेकर सिन्धु पर्यन्त है । एक ओर कैलाश, भृगुतुंग (रोहतांग), कुल्लू और स्पीति के मध्य इन्द्रकील पर्वत और इन शैलशिखरों में हिमसंस्कृति और समाज के ठारह करड़ू आदि विविध रूप और दूर छोर में पारावार रत्नविधि के धन्य नाम से भारत को महिमा प्रदान कररहे हैं :—

यथा समुद्रो भगवान् यथा हिमवान् गिरिः ।
ख्यातावुभो रत्ननिधि तथा भारतमुच्यते ॥

(महाभारत आदिपर्व ५६,२७)

पं० वि० शोध संस्थान,
साधु आश्रम = १४६०२१
होशियारपुर

प्रसिद्ध शक्तिपीठ : श्रीनयनादेवी जी

□ डॉ. प्रत्यूष गुलेरी

श्रीनयनादेवी मन्दिर भारत के प्रसिद्ध शक्तिपीठों में से एक है। इस धार्मिक स्थान पर प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में श्रद्धालु और भक्तजन माता के दर्शनार्थ दूर-दूर से पधारते हैं। हिमाचल प्रदेश के जिला बिलासपुर में समुद्रतल से 4005 फुट की ऊंचाई पर तीन दलों वाले लम्बे-चौड़ पर्वत की चोटी पर श्री नयनादेवी जी का धाम स्थित है। नयनाभिराम इस स्थान का प्राकृतिक सौंदर्य वर्णनातीत है। इसके एक ओर पंजाब का मैदानी भूभाग जिसमे—कीरतपुर, आनन्दपुर और नंगल टाऊनशिप का क्षेत्र है तो दूसरी ओर हिमाचल प्रदेश की पर्वत श्रृंखलाएं अपना मनमोहिनी जादुई प्रभाव डालती हैं।

कहा जाता है कि इस मन्दिर का निर्माण पांडवों द्वारा द्वापरयुग में हुआ था और कालान्तर में कहलूर (बिलासपुर) राज्य के राजा बीरचन्द ने आठवीं शताब्दी में जब कहलूर रियासत की नींव रखी थी तब श्रीनयनादेवी जी के जीर्णशीर्ण भग्नावशेष मन्दिर का नव निर्माण कराया था। कहलूर के राजकवि गणेश सिंह वेदी रचित "शशि वंश विनोद" काव्य ग्रंथ में उल्लेख पाया जाता है कि किसी 'नैणा' नामक गुजर ने वर्तमान नयनादेवी के उच्च श्रृंग की शिलापर गऊ का दूध प्रवाहित होते देखा। उसने कहलूर के राजा को इस विस्मयकारी घटना की खबर दी। राजा कहलूर दल बल सहित इस स्थान पर पहुंचा और मां नयना की सेवा अर्चना की। पिंडी की सुरक्षा के लिए मन्दिर का निर्माण कराया। छन्द द्रष्टव्य है —

सुन भूपति सुख मान संग ताको लयो। पर्वत हुतो उतंग वेग तिह चढ़ गयो॥
अम्बा की पिंडी लखि हग सिर नाई कैं। नैंणा देवी नाम धरयो हरषाई कैं॥
नैणे को बहुद्रव्य दीन युत मान है। मात भौन तिह रच्यो नृपम सुख मान है॥
कीनी सेव बड़ लीनी मात रिझाई कैं। देत माई वरदान हिये हरखाई कैं॥

नैंणादेवी के प्रकटीकरण, नामकरण तथा स्थान माहात्म्य का वर्णन पौराणिक और स्थानीय धार्मिक हस्तलिखित ग्रंथों में भी उपलब्ध होता है। 'शिवपुराण' और देवी भागवत आदि धार्मिक पुस्तकों में सती के प्रसिद्ध प्रसंग की कथा विस्तार से कही गई है। कहा जाता है कि सतीजी ने

अपने पिता दक्षराज के यज्ञ कुंड में योगबल द्वारा अपने भौतिक शरीर को भस्मासात कर डाला। भगवान् शंकर ने उस पुण्यमय शरीर को त्रिशूल से उठाकर उन्मादमयी अवस्था में पृथ्वी का भ्रमण किया। विष्णु भगवान ने अपने चक्र से उस भौतिक शरीर के अंग संपूर्ण भारत में भिन्न भिन्न स्थानों पर गिराकर प्रसिद्ध शक्तिपीठों की स्थापना की। इस पर्वतश्रृंग पर सती के नयन गिरे जिससे यह स्थान नयनादेवी नाम से प्रसिद्ध हुआ।

श्रीनयनादेवी मन्दिर के पुजारी स्व० पंडित हरिराम के आत्मज श्री अम्बिका प्रसाद शास्त्री द्वारा प्रकाशित श्री नयना महिष मर्दिनी महिषालय पीठ माहात्म्य पुस्तक में कहा गया है कि महामाया भगवती ने सहस्रांशु चक्र से महिषासुर का सिर काटा। उसके सिर को शिला पर फोड़ा गया। कपाल को निकाल कर ब्रह्मा जी को स्थापनार्थ दिया। त्रिशूल से महिषासुर की आंखें निकालकर अपनी पीठ के पीछे फेंकी तो गगन में देवताओं ऋषियों-मुनियों ने 'जयनयने' का उद्घोष किया। इस तरह देवताओं के 'जयनयने' उद्घोष से मां महिषमर्दिनी दुर्गा "नयना महिषमर्दिनी" नाम से विख्यात् हुई। शास्त्री जी ने इस नयनाक्षेत्र को इस आधार पर महिषालय पीठ सिद्ध करने का दम्भ भरा है। अगर विद्वान लेखक ने पांडुलिपि का समय सम्वत् दिया होता तो अनुसंधित्सुओं की जिज्ञासा शान्त होने में सहायता मिलती और ज्ञान में वृद्धि भी।

श्री नयनादेवी मन्दिर तक पहुंचने के लिए नयनादेवी बसस्टैंड से कोई सात सौ इकसठ पत्थरों और संगेमरमर की 'पौड़ियां' बनी हुई हैं। इन्हीं 'पौड़ियों' में मन्दिर तक सात ड्योढ़ियां हैं जिनपर गुप्त रूप से मां के गण-देवी–देवता विद्यमान हैं। दो ड्योढ़ियों पर मां के चरण चिन्ह् भी पाए जाते हैं। वह 'चरण गंगा' के नाम से विख्यात है। यह 'चरण गंगा आनन्दपुर साहब की उत्तर दिशा की ओर बहती हुई गंगा-सतलुज में समाहित हो जाती है। पुराने समय में लोग इस चरण गंगा में स्नान करके मन्दिर के लिए पदयात्रा प्रारंभ किया करते थे। मन्दिर के प्रांगण स्थल में पहुचकर बाहिर के प्रवेश द्वार के अन्दर दाएं श्री गणेश के साथ हनुमान जी का छोटा मन्दिर है। बाईं ओर श्री एकपाद भैरव, लक्ष्मी नारायण एवं श्वेत बटुक के मन्दिर है। सामने धर्मशिला चरणपादुका है। मुख्य मन्दिर में मां की प्रतीक दो पिंडियां अवस्थित हैं लघु नेत्राकार पिंडी स्वयंभू है जबकि बड़ी पिंडी को पांडवकालीन माना जाता है। गणेश जी की पिंडी इनके दाहिनी ओर है। ऐसा लोकविश्वास है कि माता कामनाएं और मनोतियां पूरी करती है, दुखों का निवारण करती है।

अलौकिक चमत्कार रूप में भी इस महामहिमामयी महामाया की लोकप्रियता भारत प्रसिद्ध है। इस शक्तिपीठ नयनादेवी मन्दिर में वर्ष में पांच-सात बार अकस्मात पीपल के पत्ते-पत्ते पर, साथ लगती दीवारों, मन्दिर के शिखिर, त्रिशूल तथा ध्वजों पर ढेरों सारी दीपमालाएं एक साथ प्रकाश

से जगमगा उठती हैं। अलौकिक ज्योतियां भक्तों पुजारियो और यहां के पुरोहितों आदि के सिरों, हाथों की उंगलियों पर आती देखी गई हैं।

यहां एक चमत्कारिक हवन कुंड है जो देखने में तो छोटा सा लगता है किन्तु उसमें लाखों मन हवन सामग्री होमी जा सकती है होमी गई सामग्री की भस्मी धीरे-धीरे इसी में समा जाने के प्रबल प्रमाण जुटे हैं। 'सूर्यप्रकाश ग्रथ' में सिक्खों के दसवें गुरु गोविन्द सिंह द्वारा यहां सवा लाख मन हवन सामग्री के होमने की बात कही गई है। कहते हैं मां नयना ने प्रसन्न होकर गुरु जी को खड्ग आशीर्वाद में प्रदान की थी। इसी खड्ग से गुरु गोविन्द सिंह ने अत्याचारी मुगलों से हिन्दू जाति की रक्षा की थी। वर्ष में तीन बार यहां भारी मेले सजते हैं। श्रावण शुक्ला अष्टमी का मेला भारत प्रसिद्ध है। युवा एवं नवनिर्वाचित मन्दिर कमेटी के प्रधान श्री जगदम्बा प्रसाद गौतम के मन में इस धार्मिक एवं तीर्थ स्थान को और भी आकर्षक और लोकप्रिय बनाने की कई योजनाएं हैं।

प्राध्यापक,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
धर्मशाला (हि॰ प्र॰)

●

हिमाचल में पूजित गूग्गा ज़हर पीर

□ डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न भागों में गूग्गा ज़हर पीर की लोक देवता के रूप में पूजा-अर्चना की जाती है। यहां के जनमानस में गूग्गा के प्रति अगाध श्रद्धा एवं विश्वास है। वह गूग्गा पीर, ज़हर पीर, बूग्गामल चौहान, राजाछत्री, गूगा राणा आदि कई नामों से लोकप्रिय है। सर्प-पूजा के साथ ही गूग्गा चौहान की पूजा का भी विधान है। इसका मूल कारण यह है कि उसमें सर्पदंश से व्यक्ति को नीरोग, स्वस्थ करने की अद्भुत शक्ति है। एक जनश्रुति के अनुसार गुरु गोरखनाथ गूग्गल में वासुकि नाग की झाग लाए थे और उसी से गूग्गे का जन्म हुआ था। इसीलिए उसके श्रद्धालु गूग्गल धूप जलाकर उसकी पूजा करते हैं और वह अपने श्रद्धालुओं पर प्रसन्न हो जाता है। एक अन्य कथा प्रकारान्तर में वासुकि ने तक्षक को गूग्गे की सहायताक रने के लिए भी भेजा था। जैन धार्मिक-साहित्य में गूग्गा को एक शक्तिशाली वृहद्प्रचण्ड विषधर चित्रित किया गया है जिसने भगवान महावीर को तीन बार काटा था, परन्तु उन पर कोई भी प्रभाव नहीं हुआ था। तदुपरान्त खिन्न होकर गूग्गा (गो०भूमि, ग=जा) ने अपना फन बिल में डाल दिया और उसके शरीर को चींटियों ने खा लिया। यह सहनशक्ति ओर अहिंसा में गूग्गा की आस्था दिखाए जाने का आयास मात्र ही प्रतीत होता है। हमें निःसंकोच रूप से मान लेना चाहिए कि सर्प निवारण, दंशोपचार तथा वासुकि मित्र होने से ही गूग्गा का सर्पों के ऊपर प्रभुत्व रहा है। गूग्गा पीर के पीछे यह धारणा रही है कि वह अपने जीवन के अन्तिम समय में मुसलमान बन गया था और इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया था। किन्तु हरियाणा के हिसार ज़िला में गूग्गा की जो गाथा मिलती है उसमें ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता। हिमाचल, पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में गूग्गा चौहार के अनेक मन्दिर हैं और गूग्गा नवमी के दिन श्रद्धालु मेले का आयोजन करते हैं। रक्षा-बन्धन से लेकर कृष्ण जन्माष्टमी तक घर-घर जाकर उसके जीवन की गाथा को बड़े ही सुन्दर और मार्मिक ढंग से गाते हैं।

गुड़गांव (हरियाणा) में गूग्गा चौहान

हिसार ज़िले के दारुहेड़ा ग्राम में जवार नामक मध्यवर्गीय चौहान राजपूत रहता था (अन्य रूपान्तरों में उसे राजा कहा गया है)। उसने तथा उसकी पत्नी बाछला ने बारह वर्ष तक गुरु

गोरखनाथ के शिष्य सदानन्द की सेवा की क्योंकि उनके यहां कोई सन्तान न थी। परन्तु इसका भी कोई सुफल न मिला। तब सदानन्द तो वह स्थान छोड़कर चला गया, परन्तु गुरु गोरखनाथ अचानक वहां आ पधारे। उनके वहां पधारने से सूखे वृक्ष पुनः पुष्पित एवं पल्लवित हो गए। इस कौतुक को देखकर बाछला जोगी के दर्शन करने गई। परन्तु जोगी ने स्त्री को देखकर आंखें बन्द कर लीं तथा मौन बैठे रहे। सदानन्द भी वहां आ गया। उसने गुरु की चामत्कारिक शक्ति का वर्णन बाछला के सामने किया। अन्तिम आयास रूप बाछला ने उसके अंग की बंधी घंटी को छू लिया। इस पर योगी ने आंखें खोलीं और उससे पूछा कि तुम मेरी सेवा क्यों कर रही हो। बाछला ने अपना अभिप्राय कह सुनाया। उसके अनुनय के उत्तर में योगी ने कहा कि सन्तान तुम्हारे भाग्य में नहीं है। यह सुनकर बाछला चिन्ता में डूब गयी। परन्तु वह अपने हठ की पक्की थी। उसने पुनः बारह वर्ष गुरु गोरखनाथ की भक्ति की। बारह वर्ष बाद योगी का वहां पुनरागमन हुआ।

काछला की बहन बाछला की उससे नहीं बनती थी। अतः उसने अपनी बहन बाछला के वस्त्राभूषण धारण किए और योगी के समक्ष उपस्थित हो पुत्र प्राप्ति हेतु याचना की। गुरु गोरखनाथ उसके छद्म को जान गए, परन्तु फिर भी उसे दो फल दिए और खाने पर दो पुत्र होने का वर भी। काछला प्रसन्न होकर बहन बाछला के पास पहुंची और कहा कि योगी जाने ही वाला है। यह सुनकर बाछला दौड़ती हुई उसके पास पहुंची और उन्हें रोकर याचना दोहराई। योगी ने कहा कि मैंने तो तुम्हें पहले ही वर दे दिया है। इस प्रकार बाछला को पता चला कि काछला उसे धोखा दे गई है। उसकी निर्दोषता योगी भी जान गए और उन्हें उसे अपनी गुत्थली में से थोड़ी गूग्गल निकालकर दी और वर दिया कि इसे खाने से तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो जाएगी। यह भी कहा जाता है कि यह गूग्गल वासुकि नाग के मुखफेने से भीगी हुई थी।

जेवार की सहोदरा सनीर देई को सात मास बाद गर्भ का पता चला तो उसने भाई के सामने बाछला के सतीत्व पर सन्देह प्रकट किया। बांदी सावलदे की अनुनय तथा रानी के निष्कलंक होने का दावा करने पर भी जेवार ने पत्नी को तो मारा नहीं, पर फिर भी पीट-पीटकर महल से बाहर निकाल दिया। तब बाछला बैलगाड़ी में अपने पितृगृह को चल पड़ी। सिरसा के मार्ग पर जब एक सर्प-विवर के पास में गुजरी तो गाड़ी की ध्वनि सुनकर वासुकि नाग ने अपनी रानी को बताया कि गाड़ी में बैठी स्त्री के गर्भ में उसका शत्रु पनप रहा है। उस रानी के उत्प्रेरणा से वासुकि ने अपने पुरोहित द्वारा आस्तीक (जन्मेजय के नागयज्ञ से सम्बद्ध) को बुलाया। वह वासुकि नाग का पौत्र था। उसे आदेश मिला कि बाछला को काटे। जब आस्तीक ने गाड़ी पर अपना फन फैलाया तो बाछला ने उसे धकेल कर गिरा दिया। तदुपरान्त आस्तीक ने गाड़ी खैंचने वाले बैलों में एक को डस लिया। इस समय वे दोपहर को विश्राम करने के लिए रुके थे। यह विपत्ति देखकर बाछला रोने लगी और रोते-रोते सो गई। स्वप्न में एक बालक ने उसे परामर्श दिया

कि एक डोरा अपने सिर पर बांधे और उसका दूसरा सिरा बैल के सिर से बांध दे। जागने पर उसने ऐसा ही किया और बैल उठ खड़ा हुआ।

बाच्छला शीघ्र ही सुरक्षित अपने पितृगृह पहुंच गयी। यहां फिर उसे एक बालक स्वप्न में दिखाई दिया और उसने उसे वापिस पतिगृह चलने का आदेश दिया। उसने कहा कि यदि वह अपने नाना के घर जन्म लेगा तो यह अपने माता-पिता तथा परिवार के लिए कलंक होगा। अतः वह उसके कहने के अनुसार पुनः पति के घर लौट आई और यहां जेवार ने उसे एक टूटी-फूटी झोंपड़ी रहने के लिए दे दी तथा नौकरों को उसकी ओर कोई ध्यान न देने का आदेश भी दे दिया। वहीं पर भाद्रपद की कृष्णपक्षीय अष्टमी को आधी रात के समय गुग्गे का जन्म हुआ। उस समय सारी कुटिया प्रकाशमान हो उठी और सेवारत अंधी वृद्धा दाई को दृष्टि प्राप्त हो गई। जेवार ने इस शुभ अवसर पर बड़ी धूमधाम से खुशियां मनाई और गरीबों को प्रभूत मात्रा में दान दिया।

बड़ा होने पर गुग्गे का विवाह सुरहिल के साथ हुआ। उसके जुड़वां सौतेले भाइयों ने भरसक प्रयास किया कि यह विवाह न हो। उन्होंने तो यह भी यत्न किया कि सिद्धराजा, सुरहिल का विवाह गुग्गे की बजाए उनसे कर दे। परन्तु नारसिंह वीर तथा कैलावीर के प्रयास से गुग्गे के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ। यह भी कहा जाता है कि तक्षक नाग ने भी सहायता की थी। उसने पुष्प रूप धारण कर सुरहिल को काकृष्ट किया, दंशित किया तथा बाद में ब्राह्मण रूप में गुग्गे के साथ विवाह का वचन लेकर विषचूषण कर उसे स्वस्थ कर दिया।

एक दिन मृगया से लौटते समय उसने देखा कि उसके पुरोहित की पत्नी नाड़ पानी भर रही है। प्यासा होने के कारण उसने उससे पानी मांगा। ब्राह्मणी समझी कि गुग्गा उसके साथ उपहास में ही कह रहा है। अतः वह पानी का भरा घड़ा लेकर चली गयी। गुग्गे को क्रोध आ गया और उसने तीर मारकर उसका घड़ा गिरा दिया और वह स्त्री पानी से नहा गयी। प्रतिशोध की भावना से पुरोहित ने गुग्गे के विवाह पर एक सम्पूर्ण ग्राम दक्षिणा में मांगा। गुग्गा पहले ही एक सौ एक गांऐ उसे दक्षिणा में दे चुका था। इसलिए उसने और कुछ देने से इन्कार कर दिया। पुरोहित ने अपनी मांग पर जब फिर जोरे डाला तो गुग्गे ने उसे अपनी खड़ाऊं से मारा। इस पर ब्राह्मण उसके सौतेले भाइयों के पास गया और उन्हें भड़काया कि वे अपना हिस्सा मांगें। दोनों सौतेले भाई अपना हिस्सा मांगते रहे। इस पर गुग्गे ने नारसिंह द्वारा उन्हें कारागार में डलवा दिया। माता की मध्यस्थता पर उन्हें मुक्त किया गया। जनश्रुति के अनुसार काछल के मरणोपरान्त बाछल ने उन्हें अपना धर्मपुत्र बना लिया था। ब्राह्मण के उकसाने पर वे अपना झगड़ा दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान के पास ले गए और उससे न्याय की मांग की। पृथ्वीराज चौहान ने अपने एक अधिकारी गंगा राम को राज्य विभाजन कराने के लिए भेजा। गुग्गा

चौहान ने गंगाराम की खूब पिटाई करवाई और उसका मुंह काला करके दिल्ली भेज दिया। वहां जाकर उसने राजा से शिकायत की और उसके कहने पर पृथ्वीराज चौहान स्वयं वहां पहुंचा और पुरोहित को गूग्गा चौहान को बुलाने के लिए कहा। उस दुष्ट पुरोहित ने सलाह दी कि गौओं को घेर कर रख लिया जाए। गौओं को न आया देख गूग्गे ने पास के 22 ग्रामों के सैनिकों तथा गुरु गोरखनाथ की अदृश्य सेना सहित राजा पर आक्रमण कर दिया। राजा के सामने जाकर गूग्गा ने अपना भाला भूमि में गाड़ दिया और कहा कि यदि तुम्हारा कोई भी वीर सूरमा इसे जमीन में से खेंच निकाले तो मैं अपना सर्वस्व त्याग कर दूंगा। किसी ने भी इस चुनौति को स्वीकार नहीं किया और दोनों में युद्ध हुआ। गूग्गे ने अपने दोनों सौतेले भाइयों के सिर काट कर अपनी काठी के दोनों ओर बांध लिया। उसने राजा की सेना को परास्त किया और सैनिक घबराकर हिसार दुर्ग में घुस गए। गूग्गे ने उनका पीछा किया और दुर्ग के भीतर जाकर मार काट मचा दी। अन्ततः राजा ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली और गूग्गा से क्षमा-याचना की।

जब गूग्गा घर लौटा तो बाछला ने पूछा कि किस पक्ष की विजय हुई है। मारे प्यास के गूग्गा का गला तक प्यास से सूख गया। उत्तर स्वरूप उसने दोनों सौतेले भाइयों के सिर मां के चरणों में चढ़ा दिए। इस पर बाछला ने कहा कि तुम यहां से चले जाओ और फिर कभी मुझे मुंह न दिखाना। दुःखी और खिन्न गूग्गा एक चम्पक वृक्ष के नीचे खड़ा हो गया और धरती से प्रार्थना करने लगा कि मुझे अपने में समा लो। धरित्री ने उसे कहा कि या तो तुम योगी रतननाथ से योग सीखो या कलम ग्रहण करो। रतननाथ के पास जाते हुए मार्ग में उसे गुरु गोरखनाथ मिल गए। उन्होंने उसे योग सिखाया और पुनः धरित्री से प्रार्थना करने पर अश्विन कृष्णा चतुर्दशी को 'धैंली धरती" नामक स्थान पर भूमि ने उसे घोड़े तथा शस्त्रों सहित अंक में समेट लिया।

भेड़े चरा रहे गड़रिये ने यह दृश्य देखा और जाकर बाछला को कह सुनाया। उसकी पत्नी तथा माता कहां पहुंची पर कोई संकेत, चिन्ह आदि न देखकर घर आ गईं। सुरहिल रात को रोते-रोते सो गयी। स्वप्न में उसने अपने पति को भाला लिए घोड़े पर सवार देखा। प्रातः उसने अपना सारा स्वप्न अपनी बूढ़ी धाय को कह सुनाया, जिसने उसे शेष जीवन पूजा पाठ और भक्ति में व्यतीत करने का उपदेश दिया। उसकी प्रार्थना स्वीकार हुई और परमशक्तिमान् ने उस गूग्गा को आदेश दिया कि प्रति रात्रि में अर्ध रात्रि के समय वह अपनी पत्नी से मिलने जाया करे। गूग्गा ने उसकी आज्ञा को तत्काल शिरोधार्य कर लिया। परन्तु इसके लिए उसने एक शर्त रखी कि माता को उसके आने का पता नहीं चलना चाहिए।

एक दिन श्रावण मास के तीज के त्यौहार पर ग्राम की सभी सधवाएं-सोलह श्रृंगार करके

बाछला के पास पहुंची और उससे अनुमति मांगी कि सुरहिल को भी साथ जाने की अनुमति दे दी जाए। बाछला ने एक सेविका द्वारा उसे अपने पास बुलाया तो वह सोलह-शृंगार करके आई उसने गूग्गा के स्वागतार्थ शृंगार किया था। इसी अन्तराल में सेविका ने जो कुछ देखा था उसके सम्बन्ध में बाछला को बता दिया। बाछला को सन्देह हो गया कि उसकी पुत्रवधू गूग्गा को भुलाकर पतिता भी हो गई है। उसने वहू को सब कुछ सच-सच बता देने को कहा। सुरहिल ने सच बताने से स्पष्ट इन्कार कर दिया तो उसे बुरी तरह मारा पीटा गया। अधिक मार-पीट सह न सकने पर उसने रात को चोरी-छिपे गूग्गा के आगमन के विषय में बता दिया। बाछला को तब भी विश्वास न हुआ और उसे गूग्गा को प्रत्यक्ष दिखाने के लिए कहा। अगली रात जब गूग्गा आया तो बाछला उसके घोड़े की लगाम पकड़ने को लपकी, परन्तु गूग्गा ने अपना अच्छादक वस्त्र भूमि तक फैला दिया और मां को कहा कि इसे उठाओ। जब वह उसे उठाने के लिए झुकी तो घोड़े की एड़ी लगाई और उसे मुख न दिखाने की उसी की आज्ञा की याद दिलाते हुए दृष्टि निगत हो गया। कालान्तर में जब दिल्ली जाता हुआ मुहम्द गौरी दारुहेड़ा में पहुंचा तो उसकी सेना के ढोल बजने बन्द हो गए और उसने इसका रहस्य मालूम करने पर गूग्गा की कथा सुनी और वचन दिया कि यदि मैं विजय होकर लौटा तो इस स्थल पर सुन्दर मन्दिर बनवाऊंगा। इसके अनुसार ही दारुहेड़ा की माड़ी (मन्दिर) को राजा मुहम्मद गौरी ने बनवाया था।

कुल्लू जनपद में गूग्गा पूजा

उपरोक्त गूग्गा की गाथा के बाद कुल्लू जनपद में प्रचलित आगे की कथा रुचिकर है। इसके अनुसार गूग्गा को डायनों ने खा लिया था। वह ग्वालों को झुण्ड में प्रकट हो जाता और सभी पशु उससे भयातुर हो उठते। जब गूग्गा भूमि से बाहर आता तो पशु उसे देखकर भयभीत हो जाते तो ग्वाले भूमि से गूग्गे के निकलते सिर पर 20 मन की गदा से चोट मारते थे। इस प्रकार गूग्गा अर्ध-प्रकाटित ही रह जाता था। इसलिए उसके ऊपरी (दृष्यमान भाग) को ज़हर पीर कहा जाता है। और मुसलमानों द्वारा पूजा जाता है। भूगर्भ स्थित अलक्ष भाग को 'अलखदाता' कहा जाता है। और हिन्दू इसकी पूजा करते हैं। इस परम्परा में गूग्गा की एक बहन गुगड़ी मानी गई है और काछला के दो बेटों के नाम जौर और जरेटा चलते हैं। कुल्लु जनपद में यह धारणा प्रचलित है की इन दो सौतेले भाइयों ने ब्रह्मा की गाए गोगी का अपहरण कर लिया था। इसको लेकर दोनों भाइयों से गूग्गा का घोर युद्ध हुआ था। कुल्लू जनपद में गूग्गा की माड़ी सुलतानपुर में हैं। यहां पर गूग्गा और उसका बज़ीर घोड़ों पर सवार हैं और गूगड़ी एक घोड़ी पर। नारसिंह, कालिया वीर तथा गुरु गोरखनाथ भी उसकी जमात में हैं।

कांगड़ा जनपद में गूग्गा पूजा

कागड़ा जनपद में गूग्गा से सम्बन्ध स्वतन्त्र रूपान्तरित कथा काई नहीं है परन्तु गूग्गा के

अनेक मन्दिर हैं और उनके साथ सर्पविष-निवारण की अनेक घटनाएं जुड़ी हुई हैं। यहां कुछ प्रमुख गूग्गा मन्दिरों का उल्लेख किया जाता है :-

सलोह का गूग्गा मन्दिर

यह मन्दिर सलोह ग्राम तहसील पालमपुर में स्थित है। कहा जाता है कि इस स्थान पर सम्वत् 1866 में गूग्गा प्रकट हुआ था। यहां का पुजारी घिर्थ (चौधरी) होता है। साधारण सा मेला प्रति रविवार को होता है। परन्तु विशेष मेले का आयोजन गूग्गा नवमी के दिन होता है। उस दिन दूर-दराज के लोग मन्दिर में आते हैं। मन्दिर में गूग्गा, गूगड़ी तथा गुरु गोरखनाथ की तीन फुट ऊंची प्रतिमाएं हैं जो अश्वारूढ़ है। गूग्गा के श्रद्धालुओं में मिट्टी मिश्रित जल का भोग वितरित किया जाता है।

सिब्बो दा थान (मन्दिर)

यह मन्दिर भरवाड़ में कोटला थाना क्षेत्र में स्थित है। कोई 500 वर्ष पूर्व सिब्बो नामक एक नाई गूग्गा की पूजा किया करता था। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर गूग्गा ने उसे एक मन्दिर निर्माण करने को कहा। उसने यहां पर एक मन्दिर बनवाया और उसमें गूग्गा की प्रतिमा प्रतिष्ठापित कर दी। गूग्गा ने शिव्वो को सर्प विष-निवारण शक्ति प्रदान कर दी और उसे कहा कि जो सर्पदंशित मूर्ति धोकर प्राप्त किए जल का पान करेगा, स्वस्थ हो जायेगा। यहां का पुजारी नाई होता है। श्रवण मास के प्रति रविवार को मेला लगता है। मन्दिरों में अश्वारोहियों की छः प्रतिमाएं पत्थरों पर उकरित हैं। इनकी ऊंचाई एक से तीन फुट तक है। ग्यारह प्रस्तर पिण्डियां है जिनकी ऊंचाइयां एक इंच से तीन इंच तक है। शिवजी की पिण्डी एक फुट ऊंची है। एक गाय की दो फुट ऊंची मूर्ति भी प्रस्तर पर उकरित है। अद्युना तो स्पष्ट ही गूग्गा-पूजा का स्थान शिव्वो के पूजन ने लिया है। सेवक फकीर दंशित व्यक्ति को मन्दिर में लिटा देता है और बाबा शिव्वो की स्तुति करता है और उसे मूर्ति धोए जल का पान कराता है। उस स्थल (थान) की कुछ मिट्टी भी उसे खिलाता है और कुछ दंश घाव पर मल देता है। कहते हैं ऐसा करने पर व्यक्ति बहुत शीघ्र ठीक हो जाता है। श्रद्धालु थान की मिट्टी अपने साथ घरों को ले जाते हैं। साधारण मेला प्रति रविवार विशेषता श्रावण मास में लगता है। श्रवण मास की पूर्णमासी को विशेष मेले का आयोजन किया जाता है। यहां शिव, धेनु, अश्वारोही के अतिरिक्त ग्यारह नागों की मूर्तियां भी प्रतिष्ठापित हैं और यह मन्दिर शिव्वो का थान नाम से लोकप्रिय है।

कुटयारे का गुग्गा

ज्वालामुखी से नादौन कस्बा जाते हुए व्यास नदी के इस पार मड़ोली-कुटियारा नामक ग्राम में गूग्गे की एक सुन्दर माड़ी है। मन्दिर का भवन किसी प्रचलित पद्धति पर न होकर सामान्य ढंग

का कमरा ही है परन्तु भीतर प्रस्थापित तीन अश्वारोही और दो पदातियों की मूर्तियां निश्चय ही उच्चकोटि की हैं। 200-250 वर्ष पहले इनके निर्माण होने के संकेत मिलते हैं। इस क्षेत्र में प्रायः सुनने में आता है कि इन घोड़ों को दूर से देखकर स्थानीय राजा के घोड़े हिनहिनाने लगते थे। यहां पर तीन अश्वारोही, गूग्गा, उसकी बाहेन गूगरी और दीवान हैं तथा दो पदाति वीर हैं। गूग्गा नवमी के दिन यहां मेला लगता है और मल युद्ध भी होते हैं। चेला खेलता है और लोगों के प्रश्नों का उत्तर देता है। यहां सर्पदंश का इलाज भी होता है। दंशित व्यक्ति थान की तीन परिक्रमाएं लेता है और फिर गूग्गे की मूर्ति के सामने दण्डवत् प्रणाम करता है। इस तरह कुछ देर करने के पश्चात् सर्प का ज़हर उतर जाता है। श्रद्धालु यहां पर अन्न घी, दूध भेंट स्वरूप चढ़ाते हैं और प्रसाद स्वरूप हलवा या मीठी खीलें वहां एकत्रित लोगों में बांटी जाती हैं। कांगड़ा जनपद में पठियार का गूग्गा, टीक्कर का गूग्गा, कटारे का गूग्गा आदि भी लोकप्रिय मन्दिर हैं, जहां गूग्गा नवमी के दिन मेला होता है और लोगों में गूग्गे का रोट बांटा जाता है।

हमीरपुर जनपद में भी गूग्गा-पूजा की जाती हैं। यहां पर भी अनेक स्थानों पर गुग्गे की माड़िया हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार से हैं — मदली का गुग्गा, जलाड़ी का गुग्गा, किटपल में गंगोटी का गुग्गा, बसारल का गुग्गा और ग्वालपत्थर का गूग्गा।

चम्बा जनपद में गूग्गा

चम्बा का मुण्डलिख नामक प्रवर वीर जिस पर बाद में देवत्व आरोपित कर दिया गया, गुग्गा ही रूपान्तर या नामान्तर निश्चित हो जाता है। गुग्गा निःसंदेह एक ऐतिहासिक व्यक्ति था और उसने पृथ्वीराज चौहान (1170-1193) के काल में कई युद्ध मुसलमान बादशाहों के विरूद्ध लड़े थे। अन्तिम युद्ध में उसका सिर चक्रप्रहार के कारण धड़ से अलग हो गया था। यथास्थिति टिके सिर से वह अढ़ाई घड़ियां लड़ता रहा। उसके सिर और धड़ के बीच पृथककारी लीख के कारण उसका नाम मुण्डलिख पड़ गया। कुछ समय पश्चात् उसने भू-समाधि ले ली। अपने साज संगीत, के साथ पहाड़ी भाट इस वार्ता को सुन्दर ढंग से गाते हैं। कहते हैं कि मुण्डलिख की मृत्यु भाद्रपद की कृष्ण पक्षीय नवमी को हुई थी। इसलिए इस दिन पहले गुग्गा का श्राद्ध किया जाता है और यह दिन 'गूग्गा नवमी' के नाम से अभिहित किया जाता है। चम्बा जनपद में प्रस्तर मूर्ति में एक अश्वरोही के रूप में उसे दिखाया जाता है और इस मास में उसकी सहोदरा गुग्गड़ी तथा वजीर कालू का भी। पूजा-विधान देवी के मन्दिरों जैसा ही प्रचलित है।

चम्बा में गूग्गा के मन्दिर

मुण्डलिख (गुग्गा) के मन्दिर (परगणा तीसा), ग्राम पालेवर (साइ क्षेत्र) तथा शालु (हिमगिरि) में स्थित है। शालू में यह गुग्गा मुण्डलिख सिद्ध नाम से जाना जाता है। यह गुग्गा और मुण्डलिख के अभिन्न होने का एक प्रमाण भी माना जा सकता है। इन सभी स्थानों पर मूर्तियां

तो पत्थर की हैं, परन्तु आकार तथा संख्या में असमानता और विभिन्नता है। गढ़वाली मूर्ति एक फुट ऊंची है और एक ही है। पालेवर में पुजारी व चेला हरिजन है और यहां भी यह पद वंशानुसार चलते हैं। गढ़ का मुण्डलिख जन्माष्टमी के बाद आठ दिन भ्रमण करने जाता है। पालेवर का मुण्डलिख उससे तीन दिन बाद आता है। जन्माष्टमी के दिन तक गुग्गा के छत्र और सांकल की शोभा यात्रा चलती है।

मुण्डलिख (गुग्गा) सम्बन्धी लोककथा

राणा मुण्डलिख जो गुग्गा के नामान्तर से भी ख्यात है, एक चौहान राजपूत था और उसका राज्य वृन्दावन के पास गड़ ददमेर (दारुहेड़ा) में था। उसके पिता का नाम देवीचन्द (अन्य रूपान्तरों में जेवार) तथा मां का नाम बाछला था। कई वर्ष के विवाहित जीवन में उन्हें पुत्र प्राप्ति न हो सकी। यह स्थिति बाछला के लिए विशेष दुखदायिनी थी। दर्पण में उसने अपना चेहरा देखा और अपने सफेद बालों को देखकर उसने फूट-फूट कर रोना आरम्भ कर दिया। इतने में उसका पति वहां आ गया और रोने का रहस्य पूछने लगा। बाछला ने बताया कि अब उसके अन्तर में सन्तान प्राप्ति की इच्छा मर गई है। जब यौवन में ही सन्तान प्राप्ति न हुई तो अब ढलती उमर में कैसे आशा की जा सकती है! पति ने उसे भरसक सान्तवना दी, परन्तु बाछला पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसने निराश होकर वन में घोर तपस्या करते हुए जीवन व्यतीत करने की ठान ली जिसके फलस्वरूप सम्भव है पुत्र प्राप्ति हो जावे। तपस्या एवं त्याग साधना में उसके बारह वर्ष बीत गए और वह सूख कर कांटा हो गई।

एक दिन उसकी कुटिया में एक अतिथि आया और बोला कि में गुरु गोरखनाथ हूं। उसने यह भी पूछा कि वह ऐसी आत्मपीड़क तपः साधना क्यों कर रही है। उसने अपनी सारी दुःख व्यथा जोगी को सुना दी। एक राजपूत राणा की पत्नी होने के नाते धन, मान, वस्त्राभूषण एवं सुख साधना सभी उपलब्ध हैं पर ये सब कुछ वंशावली चलाने वाले पुत्र के अभाव में सारहीन और व्यर्थ हैं। गुरु गोरखनाथ ने कहा कि तुम्हारी घोर साधना सफल है तथा तुम सीधी अपने घर चली जाओ और तीन दिन के बाद पुनः यहां आना, तब तुम्हें पुत्र प्राप्ति का वर मिलेगा। रानी बड़ी प्रसन्न हुई और घर जाकर सारा वृतान्त सुना दिया। जिसे सुनकर सभी प्रसन्न हो उठे। रानी बाछला की एक बहन काछला थी जो भूत-प्रेतों की पूजा करती थी और गढ़ मालवा के राजा से ब्याही गई थी। वह भी निःसंतान थी उसकी एक और बहन आछला थी जो ख्वाजा पीर की भक्ति करती थी। बाछला की सारी बातों को काछला ने सुना और तुरन्त गुरु गोरखनाथ से मिलने का कार्यक्रम बनाया। गुरु गोरखनाथ के वर सम्बन्धी वचन का ज्ञान होने पर भी उसने मन में ठान लिया कि जैसे भी हो, वह यह वर स्वयं प्राप्त करेगी। निश्चित दिन से एक दिन पहले ही भोली रानी बाछला के पूजा के वस्त्र धारण करके वह गुरु गोरखनाथ के डेरे में जा पहुची

और वर मांगा। उसने स्वयं को गुरु की भक्तिन बाच्छला बताकर गुरु से पुत्र प्राप्ति के फल मांगे। समय से पहले आने पर योगी ने उसे फटकारा, पर वह बोली की मैं अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकती और वर अभी दे दीजिए। अतः योगी ने उसे दो जौं के दाने दिए और कहा कि घर जाकर पानी के साथ खा लेना। इससे तुम्हारे दो पुत्र होंगे। काछला प्रसन्न होकर घर लौटी और उसने जौं के दाने (फलों) का सेवन किया और परिणामस्वरुप कालान्तर में उसके यहां अर्जन और सुर्जन नाम के दो पुत्र हुए।

निश्चित दिन पर बाच्छला योगी की सेवा में पहुंची और वर देने की प्रार्थना की। गुरु गोरखनाथ को अपने साथ हुए छल का मान न था। उन्होंने बाच्छला को कहा कि वांछित फल पाकर भी फिर वह मांगने आकर तुम दोषपूर्ण व्यवहार कर रही हो। इस उतर से व्यथित होकर तथा सोच-कर कि गुरु गोरखनाथ अपना वचन पूरा नहीं करना चाहते, वह वापिस चली गई और फिर बारह वर्षों तक घोर साधना में तल्लीन हो गई और इस प्रकार साधना में मग्न हो गई कि वह गुरु की भक्ति मे मिट्टी बन गई। इस अवधि के अन्त में गोरखनाथ पुनः आए और कहा कि तुम्हें परितोष अवश्य मिलेगा। परन्तु रानी उपहार देखकर चिढ़ गई और उसे फैंक दिया क्योंकि योगी ने थोड़ी सी राख मात्र उसकी हथेली पर रख दी थी। उस विभूति के भूमि पर गिरते ही दो योगी नूर्म सिद्ध तथा गूर्य सिद्ध प्रकट हुए और उन्होंने गुरु की स्तुति आरम्भ कर दी। गुरु गोरखनाथ ने बाच्छला से पूछा की तुमने विभूति को क्यों फैंका। तुमने यह भारी अपराध किया है। परन्तु तप के महत्व को देखकर एक बार पुनः देता हूं और घर जाकर इसे खा लेना। अधीरा बाच्छला ने तुरन्त उसे वहीं निगल लिया। तुरन्त ही उसका गर्भ भारी हो गया और उसे आभास हो गया कि मैं गर्भवती हो गई हूं। वह घर जाकर पहुंची तो उसके उभरे पेट को देखकर उसका पति देवी सिंह बोला कि तुम जोगियों या गुसांईयों की अवैध सन्तान ले आई हो। वह चुप रही। पति ने उसे अपने महल से निष्कासित कर दिया। वह बैलगाड़ी में बैठकर अपने पितृगृह को चल पड़ी। उसका पिता कृपाल अजमेर का राजा था। मार्ग में बैलों ने चलना बन्द कर दिया। उपर से ध्वनि आई कि स्वधाम मुड़ चलो अन्यथा बारह वर्ष तक मेरा जन्म न हो पायेगा। जब बैलगाड़ी को मोड़ा, तो बैल एवरित गति से गति से गढ़ दुदनेरा की ओर चल पड़े और वहां पहुंच बाच्छला अपने पूर्व स्थान पर राज भवन में रहने लगी। उचित समय आने पर उसने पुत्र को जन्म दिया। जब बालक सात वर्ष-का हुआ, तो राजा ने राजपद त्याग उसे राजा बना दिया। मुण्डलिख (गुग्गा) का जन्म माघ के प्रथम रविवार की प्रातः काल में हुआ था। बाच्छला ने गुगड़ी नाम एक कन्या को भी जन्म दिया। बाच्छला का एक भाई पिथोरा (पृथ्वी राज) चौहान भी था।

अगली मुख्य घटना थी मुण्डलिख की सुरिहल के साथ साउई। यह एक ब्राह्मण के यत्नों से सम्पन्न हुई। सुरिहल बंगाल देश के राजा की पुत्री थी तथा इसकी मंगनी पहले वासुकि नाग के

साथ हो चुकी थी। उचित समय पर मुण्डलिख अपनी सेना के साथ विवाहार्थ गौड़ बंगाल देश को चल पड़ा। उसके दल में 52 वीर थे जिसमें कैलूवीर (उसका कोतवाल) और हनुमान वीर आदि सौ लाख सेना के साथ थे। जाकर वह एक नदी के तट पर ठहरे। उधर भी कोई बड़ा सैन्य दल पड़ाव डाले है। यह देखकर मुण्डलिख ने कहा कि कौन वीर है जाकर इस जन समूह के एकत्र होने का कारण व प्रकृति का पता लाएगा' कैलू ने यह कार्य अपने जिम्में लिया। वह अपने घोड़े (अगपदीर्य दूरी जानने वाले) घोड़े पर सवार हुआ और उसे विशेष रूप से ताड़ित किया और घोड़ा एक छलांग में उसे दूसरे तट पर ले पहुंचा। कैलू घोड़े से उतरकर तथा उसे छपाकर गन्धाधरी ब्राह्मण के रूप में उस शिविर में जा पहुंचा। मुख्याधिकारी से उसकी भेंट हुई और उससे ज्ञात हुआ कि यह वासुकि नाग का सैन्यदल है और मुण्डलिख से सगाई की चर्चा सुनकर वह पहले हुई सगाई के आधार पर उस कन्या पर अपना दावा पेश करने आया है। कलिहर नाम उस अधिकारी ने बताया कि वह मुण्डलिख की सेना को नष्ट कर देगा और विशेषतः उसके कोतवाल कैलू बीर को तो निश्चय ही समाप्त कर देगा। ऐसा कहने पर कैलू क्रोधित हो उठा। परन्तु उनकी सहायता करने का छद्म कर उसने कलिहर को परामर्श दिया कि वह अपनी सेना को ऊंची-ऊंची घास में छिपा दे और जब मुण्डलिख की सेना आगे आये तो छुप-छुपे ही उस पर आक्रमण कर दे। उन्होंने ऐसा ही किया। कैलू ने छद्मवेश उतार फैंका और अपने घोड़े पर सवार हो गया। घोड़ा दूलतियां झाड़ने लगा और उस से उत्पन्न आग से घास जल उठी। इससे नाग-सेना जल कर राख हो गई। फिर घोड़ा उसे एक ही छलांग में नदी के दूसरे तट पर अपने शिविर में ले पहुंचा। वहां उसने सारी कहानी गूभा को सुना दी। तब बारात बंगाल देश में पहुंची और गौड़ बंगाल पहुंचने पर मुण्डलिख का सामना सुरिहल की भेजी जादूगरनी से हुआ। जादू डालने के लिए जादूगरनी ने सुन्दर पुष्पहार मुण्डलिख के गले में डाल दिया। हनुमान वीर वास्तविक भेद को भांप गया। उसने एक चित्कार किया और हार टूट कर गले से गिर गया। तीन बार ऐसे ही हुआ। तीसरी बारी में तो जादूगरनी का अधोवस्त्र भी नीचे गिर गया और वह सबके सामने नंगी हो गई। इस प्रकार लज्जित किए जाने की शिकायत उसने मुण्डलिख से की। मुण्डलिख ने हनुमान वीर को बुरी तरह से डांटा और उसे बुरा भला कहा। तदुपरान्त हनुमान वीर ने दुःखी होकर कहा कि मैं इसी क्षण गढ़ दुनेर लौट रहा हूं। परन्तु मेरा जाना आपके लिए हानिकारक रहेगा। आपको बारह वर्ष गौड़ बंगाल में ही रहना पड़ेगा।

मुण्डलिख ने राजा प्रसाद में प्रवेश किया, उसका विवाह सम्पन्न हो गया। उसकी सेना ने सिपाहियों पर जादू कर दिया। मुण्डलिख अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रेम पाश में जकड़ा गया। इधर मुण्डलिख और सेना मोहपाश में से बंधी थी और उधर गढ़ ददनेर पर भारी संकट आ पड़ा। उसके सौतेले भाई जो वास्तव में बांच्छला को दिए गए वर से ही उत्पन्न हुए थे, अपने को बांच्छला का ही वैध पुत्र मानते थे और राज्य-भाग का आधा हिस्सा भी लेने के लिए षड़यंत्र

रच रहे थे । कुछ कथान्तरों में कहा गया है कि काच्छला की मृत्यु के पश्चात् बांच्छला ने उन्हें अपनी गोद में ले लिया था और धर्मपुत्र भी बना लिया था। इसी समय गढ़ददनेर में एक अद्भुत पंच कल्याणी बछेरे का जन्म हुआ । वे दोनों सौतेले भाई इसे भी प्राप्त करना चाहते थे । मुण्डलिख की अनुपस्थिति का अनुचित लाभ उठा उन्होंने महम्मूद गज़नवी की सहायता से गढ़ ददनेर पर आक्रमण कर दिया । उनके लिए मुण्डलिख सेना व युद्ध विशाद्दों की अनुपस्थिति में विजय प्राप्त करना असंभव न था । लूटमार के बाद उन्होंने नगर पर अपना अधिकार जमा लिया । परन्तु जिस दुर्ग में बांच्छला और उसकी पुत्री गुगड़ी थी, उसको अपने कब्जे में अभी लेना शेष था । दुर्ग के परकोटे से गूगड़ी ने सभी कुछ देखा । क्रोधदग्ध और विक्षिप्त सी वह महल में इधर-उधर घूमती रही । अपनी दुरावस्था पर रोती हुई मुण्डलिख को याद करने लगी, महमूद गजनवी का पत्र आया कि यदि गूगड़ी मुसलमान बनकर उसके हरम (राणीवास) में आ जाए ओर दुर्गवासी आत्मसमर्पण कर दें तो उनके तन मन आदि की सुरक्षा का वचन दिया जाता है अन्यथा आक्रमण कर सबको काट डाला जाएगा । घोर निराशा की स्थिति और हतोत्साही होकर गूगड़ी कमरे में घूम रही थी अन्त में, वह मुण्डलिख के कक्ष में जा पहुंची । यह वैसा ही सजा था, जैसा इसे वह छोड़ गया था । उसकी तलवार और पगड़ी उसके पलंग पर रखी थी । जब उसने मुण्डलिख को स्मरण किया, तो म्यान से निकल कर तलवार उसके हाथ में आ गई । उसने मुण्डलिख की पगड़ी धारण की । चण्डी का रूप धारण कर नितान्त अकेली ही शत्रुओं की सेना पर टूट पड़ी और उन्हें मार-मार कर वहां से खदेड़ दिया ।

वापिस दुर्ग में आकर गूगरी को अपने भाई के मित्र राजा अजयपाल का ध्यान आया । उसने उससे प्रार्थना की कि वह भाई गुगा को खोज लाए । अजयपाल कुछ समय में तप आदि साधना में तल्लीन रहता था । उसने एक रात स्वप्न भी देखा था कि मुण्डलिख बिना सिर ही युद्ध कर रहा है । गूगरी के आग्रह करने पर वह मुण्डलिख की खोज में निकल पड़ा । पांच वीर भी उसके साथ चले, जिनमें नारसिंह वीर तथा काली वीर प्रमुख थे । वे खौड़ (बंगाल) देश में पहुंचे और इस भावना से कि शायद मुण्डलिख सुन ले, गढ़ ददनेर के गीत गाते जंगमों की भांति वह द्वार-द्वार घूमने लगे । मुण्डलिख अभी तक जादू के प्रभाव में था । एक दिन महल में गीत सुनाया गया इसे सुनकर वह उत्तेजित हो उठा । सुरहिल ने उसे शान्त करने का प्रयास किया । किन्तु अब उस पर जादू का प्रभाव खत्म हो चुका था । गढ़ददनेर की दुरावस्था सुनकर उसने अपने देश लौटने का निर्णय लिया । सभी वीर और सैनिक भी सचेत हो गए । मुण्डलिख सुरहिल व अपनी सेना के साथ गढ़ ददनेर आ गया और वहां आकर पुनः राणा का पद धारण किया ।

मुण्डलिख मुसलमानों के विरूद्ध कई (लगभग तेरह) युद्ध किए और काबुल तक उसकी तूती बोलने लगी । अन्तिम युद्ध में एक चक्र में उसका सिर धड़ से अलग कर दिया, परन्तु वह वहां पर यथावत् मुसलमानों की सेन के विरूद्ध लड़ता रहा और एक रेखा भर उभरी दीखने लगी ।

इसी से उसका नाम मुण्डलिख पड़ा। इसी स्थिति में नीले घोड़े पर सवार मुण्डलिख लड़ता रहा। उसके मित्र अजयपाल को अपना स्वप्न याद आ गया और वह उसके पीछे लगा रहा कि देखे आगे क्या होता है। यदि अढ़ाई घड़ी सिर यथावत् रहता तो मुण्डलिख बच जाता, परन्तु तभी चार चीलें आकाश में दिखाई दीं और बोली देखो-देखो। कैसा विस्मयकारी युद्ध है। मुण्डलिख बिना सिर के ही लड़ रहा है। यह सुनकर मुण्डलिख ने पगड़ी पर हाथ रखकर देखा और मुड़कर अजयपाल की ओर देखा। इससे उसका सन्तुलन बिगड़ गया और सिर भूमि पर गिर गया। योद्धा मुण्डलिख भी वहीं गिर कर मर गया। भाद्रपद का कृष्णपक्षीय नवमी के दिन मुण्डलिख का देहावसान हुआ था। उसकी समाधि पर इसी दिन उसका श्राद्ध होता है। और यह दिन 'गूगा नवमी' के दिन में प्रसिद्ध है।

आगे की कथा में मुण्डलिख की पत्नी सुरहिल ने यह मान कर कि वह मरा नहीं है, सधवा का शृंगार करने से इन्कार कर दिया। उसका दावा था कि वह प्रति रात्रि उससे मिलने आता है। एक रात्रि बहिन गगरी को अनुमति दी गई कि वह उसके कमरे में छिप जाए जहां सुरहिल पति की प्रतीक्षा कर रही थी। अर्धरात्रि में उसने घोड़े के टापों की ध्वनि सुनी और धीरे से खिसक कर घोड़े के पास गई। इसी अन्तराल में मुण्डलिख सुरहिल के कमरे में चला गया था। गगडी घोड़े की ग्रीवा से चिपक गई और मुण्डलिख के कुछ दूर तक चले आने तक भी साथ चिपकी रही। अन्त में, उसे गूगड़ी की अनुपस्थिति का आभास हुआ तो बोला कि क्योंकि मुझे देख लिया है, अतः अब मैं कभी नहीं आऊंगा।

उपर्युक्त कथा में गूगा और मुण्डलिख अभिन्न है और स्पष्टतः ही न तो वह कभी मुसलमान बना और न उनसे युद्ध को छोड़कर कोई वास्ता ही रहा सम्भवतः गूगा कथा का यही शुद्ध और प्रामाणिक रूप है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो वह पृथ्वीराज चौहान, मुहम्मद गोरी और अजयपाल के समकालीन था और यह भी सहज स्वीकार्य है कि गूगा उनका सम्बन्धी होने के कारण उनके पक्ष में महम्मद गोरी से तेरह बार लड़ा था। जयचन्द नरेश कन्नौज तथा काठियावाड़ के गिरनार के पांच चूडासम राजा भी मुण्डलिख कहाते थे। अतः कल्पना की जा सकती है कि मुण्डलिख वीरों की कोई उपाधि होगी।

श्री सद्भागवत में गूगा का उल्लेख

श्रीमद्भागवत में गूगा का संक्षिप्त परिचय केवल जन्म सम्बन्धी मिलता है। तदनुसार ऋषि कश्यप की दो पत्नियां कद्रू तथा विनता थीं। समयान्तर से कद्रू ने एक सर्प को और विनता ने एक गरुड़ को जन्म दिया। गरुड़ तो भगवान विष्णु का वाहन बना था। तथा सर्प इच्छानुसार रूप धारण कर लेता है। वह भूमि पर फिरता था, अतः गौ (पृथ्वी) गः (जाने वाला) "गोगा" कहा था। गरुड़ 'ग' (गुरुत्व) 'र' (अन्धकार) 'ड' (उड़ना) के अनुसार ऐसा वाहन बना जो गुरुत्वाकर्षण

क्षेत्र तथा उससे भी उपर के प्रकाशहीन क्षेत्र से भी उपर उड़ सकता है। जो भी हो, हिन्दुओं के लिए गूग्गा और गरुड़ दोनों समान रूप से पूजनीय हुए।

जैन ग्रन्थों में गूग्गा का प्रसंग

जैन ग्रन्थों में भी गूग्गा का प्रसंग आता है। प्राय: 2600 वर्ष पूर्व नन्दी ब्राह्ण के राज्यकाल में कनस के समीप चण्डकोशीम नामक भीषण एवम् भीमकाय विषधर रहता था। वह किस वस्तु पर दृष्टिपात करता, वह भस्मीभूत हो जाती थी कोई व्यक्ति उसके निवास स्थल के पास से जीवित नहीं जा सकता था। जब 24 वें तीर्थंकर महावीर स्वामी भिक्षु बनकर भ्रमण करते उधर आए तो प्रचुर वर्जन के पश्चात भी वे चण्डकोशिय के विविर पर गए। सर्प ने उन्हें तीन बार काटा, परन्तु उन पर कोई प्रभाव न पड़ा। भगवान महावीर ने सर्प को कहा कि अपने मूर्खतापूर्ण आचरण से तुम भगवान के सामने कैसे मुंह दिखाओंगे। इस पर उसे पश्चाताप हुआ। उसने अपने सिर को बिल में डाल शेष शरीर को बाहर रहने दिया। मार्ग-यात्रियों के लिए निरापद हो गया। पथिक और ग्वालिनें उसके शरीर पर घी, तिल, चावल, और कच्ची लस्सी आदि चढ़ाने लगी। इस प्रकार वह सर्पाधिपति बन गया। चींटियां उमड़ पड़ी और उसके शरीर को खाने लगीं। परन्तु वह तो अ। पूर्ण अहिंसावलम्बी बन गया था और करवट तक न लेता था कि कहीं कोई चींटी उसके शरीर से दब कर मर न जाएं। अब तो वह गूग्गा कहाने लगा (गूग्गा) गू) (गो) भूमि ग: चलना या जाना क्यों कि वह आधा भूमि में चला गया था।

डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा
यशपाल साहित्य परिषद् रजि०
अप्पर बाजार नादौन
ज़िला हमीरपुर (हि०प्र०)
177033

यशपाल के उपन्यास 'झूठा-सच्च' में

□ डॉ० ओम् प्रकाश सारस्वत

उपन्यास का सामाजिक आधार

साहित्यकार, समाज का चूंकि श्रेष्ठ मस्तिष्क है अतः उसका चिन्तन सामाजिक-अवबोध से पराङ्मुख होगा, यह तो कोई बुद्धिजीवी स्वीकारने को तैयार नहीं, हां यह सदा यथार्थ के ही धरातल पर ही विचरेगा उमसे ऐसी एकान्तिक अपेक्षा रखना भी यथार्थ को आसमान की तरह सारी व्यक्ति-चेतना पर तान देने जैसा होगा। क्योंकि वैश्विक-चेतना के स्तर पर, व्यक्ति-चिन्तन, अनन्त आयामी है और सामाजिक-चेतना के स्तर पर बहु-आयामी।

मैं मानता हूं कि विश्व के प्रथम साहित्यकार का चिन्तन, जब लेखन में परिणत होकर साहित्यिक रूप में उतरा तब वह निःसंदेह आकाशजीवी, वायवी और आदर्शप्रिय था। उसमें तब सान्त के अनन्त होने की चिन्ता, दिव्य-अलौकिक के यश-गुणों का वर्णन, प्रकृति की परमरमणीयता तथा निरपेक्षसत्ता का गान था। साहित्य के आदि रचनात्मक रूप का नाम यदि कविता है तो उक्त कथन परीक्षण के संदर्भ में तोलने के लिए प्रस्तुत है।

विचार के किसी एक रूप/बिन्दु की परमप्राप्ति के पश्चात् उसके दूसरे रूप का विकास होता है। अथवा कहिए कि एक विचार/रूप के समानान्तर दूसरा विचार रुप भी समुद्भूत हो चलता है। भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में वैदिक कविता की विचार/रुप की चरमोपलब्धि के पश्चात् कविता में गद्य का पुट आने लगा। विचार अपना वायवीयरूप तज कर ठोस होने को अग्रसर हुआ। दर्शनों से पूर्व ब्राह्मणों, आरण्यकों एवं उपनिषदों का गद्य चेतना की सामाजिक परिणति का द्योतक है।

यहां मैं एक बात और साफ कर देना चाहूंगा कि जैसे एक विचार की चिन्तन में चरमोपलब्धि के पश्चात् दूसरा विचार विकसित होता है उसी प्रकार विश्व में एक भाषा की सम्पूर्ण सम्भावनाओं की प्राप्ति के पश्चात् दूसरी भाषा का विकास होता है। विश्व में भाषाओं के अनेकधा विकास

के पीछे यही प्रमुख कारणस्त्रोत है। भारत के संदर्भ में वैदिक तथा लौकिक संस्कृत, एवं पालि, प्राकृत अपभ्रंश तथा हिन्दी के विकास में उत्तरोत्तर चुकती गई संभावनाएं ही भाषा-विकास की कारणभूमि है। कविता की अपेक्षा गद्य, लोकचेतना का जिम्मेदार संवादक है तथा गद्यात्मक विधाओं में उपन्यास, व्यापक दायित्व पूरक।

कहने को महाकाव्य यद्यपि समाज की संस्कृति, सभ्यता परम्परा और इतिहास का विशाल संहर्त्ता है तथापि उपन्यास जीवन की ठोस सच्चाइयों से आबद्ध होने के नाते विश्वसनीयता के अधिक निकट है। महाकाव्य अधिकांशतः जहां अतीतजीवी या इतिहासाश्रित होते हैं और जो अप्राप्त आदर्शों की स्थापता और प्राप्ति पर बल देते हैं वहां उपन्यास बहुधा वर्तमान जीवी तथा सामयिक सामाजिक-चेतना से अनुप्राणित होते हैं। परिणाम स्वरूप, महाकाव्य महिमामंडित चरित्रों को देवताओं की तरह प्रस्तुत करते हैं और उपन्यास जीवन के सामान्य पात्रों को लोक के धरातल पर साधारणजनों की तरह उपस्थित करके हमारा विश्वास अर्जित करने में सफल होते हैं। वर्तमान समय में साहित्य की तमामविधाओं की तुलना में उपन्यास समाज के अधिक निकट है अतः वह समाजिक चेतना का भरोसेमंद चितेरा है।

समाज और सामाजिक चेतना

समाज यहां हम समाजिक-चेतना पर प्रकाश डालने से पूर्व यदि समाज की परिनिष्ठित परिभाषा पर विचार कर लें तो आगे हमें विषय-प्रतिपादन में सौकर्य रहेगा। डी. एम. मजुमदार के अनुसार समाज-समाजिक-सम्बन्धो की एक व्यवस्था है सामाजिक सम्बन्ध इतिहास की उपज होते हैं और इन्हें आदर्श मूल्यों द्वारा संगठित रखा जाता है। अतः समाज एक समाजिक एवं नैतिक (आदर्श) व्यवस्था है। गिडिंग्स का कहना है कि 'समाज स्वयं एक संघ, एक संगठन एवं औपचारिक सम्बन्धों का योग है जिसमें सहयोगी व्यक्ति परस्पर-आबद्ध हैं।' मैकाइवर ने समाज को परिभाषित करते हुए लिखा है कि मनुष्यों में जो चलन, कार्यविधियां, पारस्परिक सहायता की प्रवृत्ति, शासन की भावना आदि जो अनेक समूह व विभाग विद्यमान हैं तथा मानव-व्यवहार के सम्बन्ध में जो स्वतन्त्रताएं व मर्यादाएं हैं उनकी व्यवस्था ही समाज है।' उक्त इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मनुष्यों के समूह का नाम ही समाज नहीं अपितु वह समूह के अन्तर्गत व्यक्तियों के सम्बन्धों की व्यवस्था है। ये व्यक्ति सम्बन्ध, समाज के विविध रिश्ते हैं जो सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यकलाप के दौरान स्थापित होते रहते हैं।

सामाजिक चेतना सामाजिक-चेतना, मानवीय संज्ञान का वह रूप है जो लौकिक स्तर पर हमारे विवेक को समाज के विविधपक्षों से जोड़ता है और अलौकिक स्तर पर चिति के रुप में अभिज्ञात

---

1 उक्त सभी परिभाषाएं बदलते मूल्य और आधुनिक हिन्दी नाटक 'शोध प्रबन्ध में डॉ. सारस्वत द्वारा उद्धत---पृ. 1।

होकर वैश्विक संवित या आत्म चैतन्य के रुप में विवेचित होता है। शास्त्रीय शब्दावली में चेतना, जहां चिति अथवा संवित् के रुप में परिगृहित है वहां सामान्य शब्दावली में वह विवेक के विभिन्न स्तरों पर कार्य अभाव का बोध कराने वाली शक्ति भी है। प्रस्तुत निबन्ध में सामाजिक-चेतना का क्षेत्र समाज के अन्तर्गत व्यक्ति (स्त्री-पुरुष) परिवार तथा समाज के विभिन्न उच्च, मध्यम एवं निम्नवर्गों तक ही परिसीमित रहेगा।

यशपाल की समाज विषयक अवधारणा

अब हम 'झूठा-सच्च' में सामाजिक-चेतना का रुप दिखाने से पूर्व यशपाल की समाज-विषयक अवधारणा पर विचार कर लेंगे। यशपाल की समाज-विषयक अवधारणा मार्क्सवादी-चेतना से ही अनुप्राणित है। मार्क्स के अनुसार मनुष्य, एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक चेतना से भिन्न उसका कोई अस्तित्व नहीं। सामाजिक-चेतना व्यक्ति के विचारों, सिद्धान्तों और दर्शन का ही समूहमात्र है।[2] इसी प्रकार यशपाल भी कहते हैं कि—'आज मैं जो कुछ हूं वह अपनी सामाजिक परिस्थितियों, समाज से पाये संस्कारों और चेतना की क्रियाओं और प्रक्रियाओं के प्रभाव से बन गया हूं। समाज से भिन्न मेरा कोई अस्तित्व या चेतना नहीं रही है और न हो सकेगी। मेरा जीवन अथवा व्यक्तित्व अथवा समाज के लिए विराट् शरीर के असंख्य जीवकोशों में से एक है।[3] स्पष्ट है यशपाल स्वयं को समाज की एक अनिवार्य परिणति मानते हुए उसको भिन्न निज का कोई अस्तित्व नहीं स्वीकारते। वे व्यक्ति चेतना को भी सामाजिक चेतना से भिन्न मानने के पक्ष में नहीं हैं जबकि इस पर बहस के लिए गुंजाइश शेष है। अस्तु।

झूठा-सच्च में व्यक्त सामाजिक चेतना

दो खण्डों (प्रथम खण्ड 1958 तथा द्वितीय खण्ड 1960) में प्रकाशित तथा लगभग एक हज़ार दो-सौ पचास पृष्ठों में विस्तीर्ण 'झूठा-सच्च' उपन्यास यशपाल की बृहद् कृति ही नहीं अपितु उद्देश्य और महत्व, की दृष्टि से भी उल्लेख्य रचना है। उपन्यास का पहला भाग 'वतन और देश' देश के विभाजन से पूर्व और विभाजन के समय की विध्वंसकारी शक्तियों, सांम्प्रदायिक घटनाओं, राजनीतिक परिवर्तनों, पारस्परिक स्वार्थी संघर्षों, लूटपाट, हत्या तथा रक्त रंजित भारत का चित्र प्रस्तुत करता है तो दूसरा भाग 'देश का भविष्य' स्वदेशी शासनान्तर्गत पलने वाली, सामाजिक राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं, विभाजन तथा अर्थ की विषमता से टूटते-बिखरते परिवारों तथा बदलती सामाजिक चेतना पर प्रकाश डालता है। व्यक्ति, समाज, राजनीति तथा अर्थ के व्यापक पहलुओं को अपने विशाल आयाम में पर्याप्त कुशलता के साथ समेटने के कारण ही समीक्षकों

2 वी. अकानाशेव—मार्क्सिस्ट फिलॉसफी, पृ. 353।
3 योजना-जनवरी-29,1961, पृ. 58।

ने एक ओर इसे महाकाव्यात्मक उपन्यास की संज्ञा से विभूषित किया है तो दूसरी ओर उपन्यास सम्राट् प्रेम चन्द की यथार्थवादी औपन्यासिक परम्परा के विकास की सशक्त कड़ी के रूप में उद्धत किया है। झूठा-सच्च निःसंदेह तोल्स्तोय के युद्ध और शांति तथा मुन्शी प्रेमचन्द के गोदान' की समकक्षी चेतना का श्रेष्ठ उपन्यास है।

झूठा-सच्च' के नामकरण की चेतना पर प्रकाश डालते हुए लेखक स्वंय कहता है कि उपन्यास में, तारा का सोमराज की पत्नी होना झूठा-सच्च है। यह कानूनी तौर पर सच्च है और नैतिक तथा न्याय की दृष्टि से झूठ। संभवतः ऐसी ही घटनाओं के आधार पर उपन्यास का नाम करण भी हुआ है। उपन्यास के झूठ-सच्च के सम्बन्ध में डॉ० मेध का कहना है कि इस उपन्यास का झूठ है घटनाएं, जन-जीवन को रोकने वाली शक्तियां और सामन्ती संस्कार। इसका सच्च है ऐतिहासिक अनुभव, सामाजिक चेतना की प्रगति।[4] डॉ० महान के अनुसार झूठ-सच्च की समस्या को हम उपन्यास में मूलतः शादी और तलाक के माध्यम से और अंशतः पुरी के पतन द्वारा उठाया गया है।[5] परन्तु मेरे विचार में इस उपन्यास का झूठ है भारत की आजादी जो असल में आर्थिक विपन्नता तथा मानसिक दासता के कारण मिल कर भी न मिली के बराबर है और इसका सच्च है, विभाजन के समय घटी दुर्घटनाए, लूट-पाट, आगजनी, हत्या तथा सामाजिक असमानता जो उपन्यास में कल्पना से विनियोजित करके अनुभव के आधार पर चित्रित किए गए हैं। झूठा-सच्च' भारत विभाजन का प्रामाणिक साहित्यक दस्तावेज है।

व्यक्ति चेतना

व्यक्ति समाज का अपरिहार्य अंग है। व्यक्ति के बिना समाज की परिकल्पना सम्भव नहीं। व्यक्ति क्योंकि समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा है अतः सामाजिक चेतना में व्यक्ति (पुरुष+स्त्री) चेतना कैसे उभरी है यह हम विवेच्य उपन्यास के माध्यम से देखेगें।

भारतीय समाज में पुरुष को स्त्री की अपेक्षा बहुत महत्व प्राप्त है। वह स्त्री की तुलना में सर्वत्र अग्रगण्य है। वास्तव में पुरुष प्रधान इस समाज में पुरुष की समस्त ज्यादतियां और कमजोरियां स्त्री के लिए मान्य मूल्यों की तरह हैं। पुरुष जो चाहे सो करे पर स्त्री को मर्यादा-अर्थात् एक प्रकार की जबरदस्ती बनाई गई मूल्य संहिता के भीतर रहना होगा। पुरुष अपनी प्रत्येक उच्छृंखलता के लिए स्वतन्त्र है जबकि स्त्री अपनी आवश्यक मांग पूर्ति के लिए भी स्वतंत्र नहीं। फलतः अधिकार और सुविधाओं में समानता न रहने के कारण द्वन्द्व उभरता है और संघर्ष की स्थिति उपजती है। उपन्यास में सोमराज और तारा के प्रंसग द्वारा लेखक ने चेतना के

4 हिन्दी उपन्यासः पहचान और परख पृ. 214, सम्पादक डॉ० महान।
5 यथार्थवादी उपन्यास और मध्य वर्गीय चेतना, पृ. 117 पर डॉ० वीना श्रीवास्तव द्वारा उद्धृत।

स्वतन्त्र रूप को दर्शाते हुए समान विचार शीलता के अभाव में व्यक्ति स्वातन्त्र्य का समर्थन किया है। यशपाल नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता के ही पक्षधी नहीं है अपितु वे पुरुष द्वारा नारी की इच्छा के विरुद्ध उसे आत्म समर्पण के लिए बाध्य करना या विवाह संस्था द्वारा उसके न चाहने पर भी बांधे रखने के खिलाफ हैं।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध

यशपाल- स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को, उभय-पक्षीय सहमति के अध्यय पर मान्यता देते है। वे मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को पुरुष की सम्पत्ति और धर्म के भय से जकड़ देने के पक्ष में नहीं है। वे इस सम्बन्धी को प्राकृतिक आवश्कता और पारस्परिक कर्तव्य बोध का अनुबन्ध मानते हैं। उन्हें इसमें दोनों में से किसी एक का भी दास बन जाना स्वीकार्य नहीं। यशपाल की दृष्टि में पति-पत्नी का सम्बन्ध तथा तत्सम्बन्धी अधिकार स्वत्व से नहीं पारस्परिक प्रेम से तथा अनुराग जन्म अनुमति से होते हैं।[6] अतः ऐसे सम्बन्धों का निर्वाह यदि समाज और धर्म के भय से ही किया जाएगा तो उचित नहीं होगा क्योंकि पारस्परिक सहमति तथा प्रेम के अभाव में ये सम्बन्ध यशपाल की नज़रों में व्यभिचार ही कहे जाएंगे। यशपाल इसी लिए इस उपन्यास में कनक, शीलो तथा तारा आदि सभी को उन झूठे तथा ज़ोर-जब्ती के बन्धनों से मुक्त कर देते हैं। यशपाल का कथन है कि पति-पत्नियों के यौन अनुभवों की वास्तविकता के बारे में, यह कहने के लिए मज़बूर हूं कि ऐसी स्थिति में हमारे समाज के निन्यानवे प्रतिशत नर-नारियों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों और आवश्यकताओं का अन्यायपूर्ण दमन हो रहा है। निन्यानवे प्रतिशत नर-नारी बिना किसी शारीरिक संतोष अथवा प्रेम के यौन-सम्बन्धों तथा दाम्पत्य को निबाह रहे ही रहना चाहिए।[7] संभवतः इसीलिए, यशपाल एक पुत्री के पश्चात् भी 'पुरी' को कनक से तलाक दिलवा कर उसकी शादी पुन: गिल से करवा देते हैं।

यशपाल नारी की आर्थिक दासता से मुक्ति के भी हिमायती हैं। नारी की आत्मनिर्भरता की वकालत वह बड़े ज़ोर-शोर से करते हैं। वे इसीलिए 'कनक' के प्रति पूरी सहानुभूति रखते हैं। उन का कथन है— क्योंकि वह ईमानदार है और उनमें आत्मनिर्भरता का साहस और विश्वास है। वह जानती थी कि वह 'पुरी' से तृप्ति, सन्तोष और प्रसन्नता नहीं पा सकती थी, न उसे दे सकती थी, ... 'पुरी' पुरुषत्व की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए उससे छल कर रहा था... कनक ऐसे छल में सहयोग नहीं देना चाहती थी। यदि कनक चाहती तो कानूनन, पुरी से बेटी के

6 अप्सरा का श्राप पृ. 126।
7 धर्मयुग 2 मई 1965, पृ. 46।

लिए खर्च ले सकती थी। उसने ऐसा भी नहीं किया क्योंकि उसमें आत्मविश्वास था और वह आत्मनिर्भर रहना चाहती थी।[8] यशपाल के ये विचार नारी स्वातन्त्र्य के पूर्ण पक्षधा हैं।

पारिवारिक चेतना

परिवार, चूंकि समाज का महत्त्वपूर्णघटक है अतः यशपाल ने समाज में परिवारिक सम्बन्धों, संयुक्त, आणविक तथा विघटित परिवारों के विषय में भी विचार किया है।

भारतीय समाज में अभी तक भी संयुक्त परिवार प्रथा विघटित नहीं हुई है। समाज में संयुक्त-परिवार का आदर्श अपना महत्त्व शत प्रतिशत नहीं तो 70 प्रतिशत तो, बनाए हुए ही हैं। क्योंकि भारत की अधिकांश जनसंख्या अभी भी ग्रामीण है अतः गांवों में अभी भी संयुक्त परिवार प्रथा विद्यमान है।

संयुक्त परिवार-प्रथा में जहां पारस्पारिक-सहयोग, सह-अस्तित्व तथा एक-दूसरे के सुख-दुःख में सुखी:दुःखी होने एवं सबकी उन्नति के सामूहिक-प्रयास करने आदि के अनेक लाभ हैं वहां व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास, तथा सबके लाभ के लिए निजि-हितों की बलि चढ़ जाने जैसे अनेक दोष भी विद्यमान हैं। आज धनार्जन के अनेक अवसर उपलब्ध हो जाने के कारण, गांवों से नवयुवक शहरों में आकर बसने लग गए हैं जिससे संयुक्त परिवार प्रथा टूट कर आणविक-परिवार प्रथा में परिवर्तित होती जा रही है। आणविक परिवारों में पति-पत्नी तथा उनके एक या दो बच्चे आते हैं। वैसे, स्त्री की, आजीविक कमाने से उसके अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने से तथा स्त्री-पुरुष के अपने-अपने अहं के कारण अब आणविक परिवार भी विघटित होने लग गए हैं।

संयुक्त परिवार में बड़े की अवहेलना नहीं की जा सकती। राम ज्वाया के अपने छोटे-भाई रामलुभाया के यहां जाने पर खूब सत्कार होता है। उसके वचनों को कोई टाल नहीं सकता। रामज्वाया द्वारा अपने छोटे-भाई रामलुभाया की लड़की तारा की शादी एक निकम्मे घटिया वर, सोमराज साहनी के साथ तय कर देने पर भी रामलुभाया कुछ नहीं कहता। वह कहता है—जैसे आप कहेंगे, करेंगे।[9] रामलुभाया के इन वचनों में बड़े के आगे छोटे की दीनता ही व्यक्त होती है। संयुक्त परिवार में जो अधिक कमाता है उसका दबदबा भी परिवार के अन्य सदस्यों पर

---

8 धर्मयुग 2 मई, 1965, पृ. 46।

9 झूठा-सच्च भाग-1, पृ. 152।

रहता है। रामज्वाया चूंकि परिवार में सबसे अधिक कमाता है। अतः उसका और उसकी पत्नी का दबदबा रामलुभाया उसकी पत्नी तथा अन्य पर भी है।

अब परिवारों में नयी पीढ़ी रूढ़ियों, ऊंच विश्वासों तथा गलत धारणाओं के प्रति विद्रोही हो गई है जिसका प्रमाण पुरी के द्वारा तारा के रिश्ते का विरोध करना है। संयुक्त परिवार में अगर किसी भी का पति मर जाए तो उस विधवा की दशा कितनी दयनीय तथा असहाय हो जाती है यह यशपाल ने अपने दूसरे उपन्यास देशद्रोही में डॉ० खन्ना के मर जाने पर विधवा राज की आर्थिक अवस्था चित्रण द्वारा दिखाया है।

झूठा-सच्च में वर्गीय चेतना

आज का भारतीय समाज जाति पर नहीं अपितु वर्गों पर आधारित है। जातिगत संस्कारों तथा कर्मवाद की परम्परा के उच्छिन्ना हो जाने से, बढ़ते हुए आर्थिक दबावों ने समाज में उच्च, मध्य तथा निम्नवर्गों का निर्माण किया है। देश में छद्मरुप से बढ़ता पूंजीवाद इस अर्थाधाश्रित वर्गीय समाज के लिए जिम्मेदार है। देश में बढ़ती हुई यान्त्रिकता, नगरी राण तथा औद्योगीकरण ने भी समाज में वर्गवाद को प्रक्षेप दिया है। यशपाल के इस उपन्यास में वर्गीय-चेतना का स्वरुप इस प्रकार देखा जा सकता है।

उच्च वर्ग

समाज का उच्च कहलाया जाने वाला तथा कथित वर्ग, अपने धन के गर्व, मान प्रतिष्ठा के मद तथा अहंकार में चूट रहता है। वह समाज का स्वयं को श्रेष्ठ तथा आगुआ भी मानता है। एक प्रकार का दम्भ उसे सदा घेरे रहता है। उपन्यास में मिसेज़ अगरवाल, प्रसाद तथा अवस्थी आदि पात्र, उच्चवर्गीय संस्कारों ने युक्त हैं। यह वर्ग दिखावा पसन्द सभ्य तथा सुसंस्कृत कहलाने दिखाने के चकर में भी रहता है। उपन्यास में मिसेज़ पुरी का दिखावे के लिए खादी की साड़ी पहनना दिखावे का अच्छा उदाहरण है। निटिंग क्लब के चित्रण द्वारा इस वर्ग के अडम्बर पर और भी प्रकाश पड़ता है।[10] निटिंग के लिए क्लब था। युद्ध के मोर्चे पर गए सिपाहियों के लिए स्वैटर मौजे वगैरह हाथ से बुन कर भेजना भी अंग्रेजों के प्रति अनुराग-भक्ति प्रकट करने के लिए ही था। इसी प्रकार औरतों का गांधी जी की प्रार्थना में खादी पहन कर जाना भी उनके दिखावे का ही द्योतक है। उनके गांधीवादी संस्कारों का नहीं।

---

10 झूठा-सच भाग 2, पृ. 181।

यशपाल ने इस वर्ग की मक्कारी तथा लाभकारी अवसरवादिता की ओर भी संकेत किया। यह तथा कथित उच्चवर्ग चूंकि पूंजीपति वर्ग है अतः यह सर्वसाधारण के लाभ को भी अपनी ही झोली में डालने को उद्यत रहता है। इस पर मिस्टर नरोत्तम के विचार द्रष्टव्य हैं कि — डैडी को बहुत चिन्ता है बाजार मे चीनी की किल्लत है और डैडी की सातलाख की चीनी पड़ी है। पैट्रोल पर भी राशन हैं। कांग्रेस ने आइडिया कमेटी के सेशन के लिए डैडी से मय पैट्रोल दो गाड़ियां मांगी हैं, पर उन्हें नहीं खयाल पैट्रोल कहां से आएगा? इंग्लैंड में पैट्रोल का राशन था तो प्रधानम (प्राइम मिनिस्टर) भी पार्लियामेंट में पैदल जाता था।[11] इसी प्रकार सरकारी संस्थानों हस्पतालों आदि मे बैठे ये उच्चवर्ग के लोग जनता की भलाई के लिए नहीं अपितु अपनी बड़ाई को सामने रख कर काम करते हैं। लखनऊ में एक प्राइवेट डाक्टर के द्वारा आपरेशन के समय सोलह-सतरह साल के एक लड़के का आपरेसन के लिए पेट खोल कर अगली कार्यवाई यह कर बंद देना कि अगर एक हजार रुपया और होगी तो पेट सी देंगे[12] अन्यथा उसका क्या बनेगा यह आप समझ ही सकते हैं।

मध्यवर्ग

उच्च और निम्नवर्ग के बीच की कड़ी मध्यवर्ग है। यह वस्तुतः दो पाटों का घुन है। एक ओर तो यह वर्ग ऊंचा उठने/दिखने की दौड़ में उच्चवर्ग की रीस करता है तो दूसरी ओर अधिक साधन सम्पन्नता न होने के कारण वह निम्नवर्ग के आस-पास ही आ टपकता है। वैसे समाज का यह वर्ग अधिकांशतः बुद्धिजीवी है। परिणामस्वरूप साधनहीनता के कारण यह वर्ग स्वयं को न तो उच्चवर्ग तक पहुंच पाता है और ना ही बुद्धिजीविता के कारण निम्न वर्ग के साथ मिल पाता है अतः फल होता है दोहरी-यन्त्रणा।

यशपाल के झूठा-सच्च में इस वर्ग का भी चित्रण मिलता है। वैसे तो हमारे अधिकांश लेखक और उनके पात्र मध्यवर्गीय ही अधिक हैं क्योंकि हमने अभी कहा कि यह वर्ग अधिकतर बुद्धिजीवी होता है अतः उच्च और निम्नवर्ग को बौद्धिक चर्चा से कुछ खास अधिक लेना देना नहीं होता। इस सम्बन्ध में नरोत्तम-कर्नल सम्वाद दृष्टव्य है जहां कर्नल कहता है कि वे धर्म, राजनीति तथा स्त्रियों आदि से सम्बन्धित विषयों की चर्चा से वे दूर रहते हैं।[13]

---

11 झूठा-सच्च भाग-2, पृष्ठ 182
12 वही— पृष्ठ 309
13 वही— पृष्ठ 555

किसी समाज में, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियां ही व्यक्ति की उन्नति-अवनति के लिए उत्तरदायी होती है अतः यशपाल ने परिस्थितिवश बनते बिगड़ते परिवारों/व्यक्तित्वों को उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उपन्यास में, सामाजिक विषमता तथा आर्थिक विपलता के कारण तारा तथा पुरी (जयदेव के व्यक्तित्व उभर नहीं पाते। मध्यवर्गीय पुरी की महत्वाकांक्षाएं पहले तो बहुत बढ़ जाती हैं परन्तु अन्त में राजनीति के चक्कर में पड़ कर वह उन्हें कार्यरूप में परिणित नही कर पाता। इसी प्रकार आर्थिक विषमता के ही कारण तारा तथा अन्य मध्यवर्गीय चरित्र तथा परिवार किस प्रकार अपनी लाज में लिपटे रह कर, भूखे पेट सोने को मजबूर होते हैं। विभाजन के दिनों में, लाहौर, जालन्धर तथा दिल्ली के गली-मुहल्लों में मध्यवर्गीय चित्रण को यशपाल ने खूब मर्मस्पर्शी बना कर उभारा है।

यह वर्ग अपनी कमियों को भी कमजोरियों की तरह छिपाता है। वास्तव में झूठी शान इज्जत के दिखावे तथा मध्यवर्गीय संस्कारों के कारण यह वर्ग जो चाहता है वह कर नहीं पाता और जो नहीं चाहता वह कर बैठता है। जयदेव पुरी पंडित जी की लड़की कनक को ट्यूशन पढ़ाने जाता है। पं० जी पुस्तक के अनुवाद के लिए उसे 100 रुपये अग्रिम राशि के रूप में देते हैं परन्तु मिस्टर पुरी रुपयों की आवश्यकता होते हुए भी संकोचवश रहता है — पंडित जी रुपयों की इतनी क्या जरूरत है? हो जाएगा। अभी रहने दीजिए।

वास्तव में यह उपन्यास मध्यवर्गीय चेतना से ही अधिक अनुप्राणित है। लेखक ने इस वर्ग की सारी इच्छाओं, कामनाओं, आवश्यकताओं, कमियों महत्त्वता कांक्षाओं एवं संस्कारगत हदबंदियों का सविस्तार चित्रण किया है। उपन्यास के अधिकांश पात्र ही नहीं अपितु लेखक स्वयं एक मध्यवर्गीय परिवार या समाज के इसी वर्ग से सम्बन्धित है।

निम्नवर्ग

समाज की सारी ज्यादतियों का शिकार, उच्चवर्ग के कोप, घृणा का पात्र, तथा मध्य वर्ग के अस्वीकार व तिरस्कार का पात्र वर्ग-निम्नवर्ग कहलाता है। यद्यपि समाज के अधिकांश कार्य, जिन्हें, उच्च और मध्य वर्ग के सभ्यजन अपने कुल, पद तथा तथाकथित उच्च संस्कारी मानसिकता के कारण करने मैं अपनी तौहीन समझते है उन्हें ये इस वर्ग के लोग करते है। जाति प्रधान समाज में यह वर्ग शुद्ध वर्ग कहता है तथा आर्थिक-स्तर पर बंटे या बंधे समाज में यह वर्ग निम्न वर्ग के नाम से अभिहित किया जाता है। झूठा-सच्च में, सोमराज, मास्टर राम लुभाया (इसे आप निम्न मध्य वर्ग में भी गिन सकते हैं।) पुरी का ताऊ राम ज्वाया, तथा वधवामल आदि निम्नवर्ग के पात्रों में गिनाए जा सकते है। डॉ० महानवीर के अनुसार यशपाल ने अपदार्थता, तुच्छता, गुंड़ई,

भंगापन दिछोरापन और नीचता निम्नमध्यवर्गीय पात्रों में ही दिखाई है पर——ध्यान देने की बात है कि पूरे उपन्यास मे, निम्नवर्गीय अर्थात सर्वहारा पात्रों को भूमिका नहीं दी गई है। जहां कहीं ये पात्र हैं भी तो उनकी भूमिका प्रायः नगण्य है।[14] यद्यपि उक्त कथन से कुछ हद तक सहमत हुआ जा सकता है तो भी यशपाल ने इस वर्ग के लोगों के साथ अपनी सहानुभूति भी दिखाई है। पुरी के शब्दों में '—रात कूद-कूद कर नाचने गाने वाले पहाड़ी लोग क्या आशा कर रहे है? रात स्वतन्त्र हो जाने के बाद वे आज फिर रिक्शाओं में जुत गए होंगे।[15] इसी प्रकार नैयर के शब्दों द्वारा भी फिर स्वतन्त्रआ से इन लोगों को क्या मिलेगा? यशपाल की इस सर्वधारा वर्ग भूप्रति सहानुभूति तथा मानवता के प्रति आस्था के भाव को ही झलकाते हैं।

रीडर, हिन्दी विभाग
पत्राचार निदेशालय हि०प्र० वि. वि.
शिमला-171 005

●

14. क्रान्तिकारी यशपाल—पृ. 135 ।
15. झूठ-सच्च, भाग 1— पृ. 443 ।

करसोग क्षेत्र का माहूंनाग

□ हेमप्रभा शर्मा

करसोग से बीस किलोमीटर दूर माहू गांव में माहूंनाग का मेला ज्येष्ठ संक्रान्ति से ज्येष्ठ प्रविष्टे तीन तक बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। यहां पर माहूंनाग की पत्थर तथा अष्टधातु की मूर्ति है। माहूंनाग का यहां पर पुरातन मन्दिर होने के कारण ही इस स्थान का नाम 'माहू' पड़ा। यहां की ऊंचाई लगभग सात हजार फुट है।

माहूंनाग का अविर्भाव लोकधारणा के अनुसार माहू गांव से लगभग दो मील नीचे सैंदल नाम के गांव में एक जमींदार अपने खेत में हल चला रहा था। हल चलाते-चलाते उस हल का अग्र भाग (फाल) मिट्टी के नीचे किसी धातु से टकरा गया। जमींदार ने तत्काल मिट्टी खोदकर देखा कि खेत के किनारे (बीड़ में) अष्टधातु की एक मूर्ति है। किसान ने उस मूर्ति को हाथ से उठाकर खेत के एक ओर रख दिया तथा दुबारा हल चलाने लग गया। जब वह किसान हल चलाते-चलाते खेत के अन्तिम छोर पर पहुंचा तो उसका हल फिर किसी वस्तु से टकराया। उसने पुनः मिट्टी को इधर-उधर करके देखा तो पाया कि खेत में तांबे के दो बड़े-बड़े नगारे पड़े हैं। किसान ने तब यह बात किसी को नहीं बताई और सायंकाल के समय नगारों तथा मूर्ति को घर ले आया। वह इस घटना के बारे में बार-बार विचार करने लगा।

रात को सोते समय उस किसान को स्वप्न हुआ। स्वप्न में एक पुरुष ने उसे दर्शन देकर कहा कि "मैं माहूंनाग हूं तथा तुम्हारे गांव में रहना चाहता हूं। जो मूर्ति तथा नगारे तुम्हें आज अपने खेत में मिले वे मेरे ही हैं। तुम सारे गांव वाले मिलकर किसी मन्दिर में मेरी इस मूर्ति की विधिवत् स्थापना करो और मेरे नाम का प्रचार करो। मैं आज से तुम लोगों का पूज्य हूं।' यह आदेश देकर वह पुरुष अन्तर्धान हो गया।

दूसरे दिन उस किसान ने अपने स्वप्न की बात सारे गांव वालों को बता करके मूर्ति तथा नगारे भी गांव वालों को दिखाये। फिर सब गांव वालों ने मिलकर एक मन्दिर बना सावन के तीन प्रविष्टे माहूंनाग की मूर्ति की विधिवत् उस मन्दिर में स्थापना कर दी। उस समय से ही माहूंनाग की पूजा की शुरुआत हो गई।

माहूनाग की परीक्षा –उन दिनों रियासत सुन्दरनगर में राजा श्यामसेन का राज्य था। राजा लोग अपने सिवाय किसी दूसरी शक्ति को आसानी से स्वीकार नहीं करते थे। फलतः उसने माहूंनाग की शक्ति को आजमाने के लिए उस पर धावा बोल दिया! राजा श्यामसेन प्रजा सहित पालकी में बैठकर माहूंनाग के मन्दिर आया तथा माहूंनाग की मूर्ति को बहुत बड़े-बड़े ढोल में बंद करके उपर से जंजीरों में बांधकर दिल्ली ले गया। दिल्ली में भी माहूंनाग माहूं का रूप धारण करके पहुंचा तथा राजा श्यामसेन के समक्ष साधारण सा पुरुष बनकर पहुंच गया। उसने राजा को चौसर का खेल खेलने के लिए चुनौती दी। उसने यह चुनौती इस शर्त पर दी कि अगर मैं हार गया तो मैं आपकी प्रभुता स्वीकार करूंगा अगर आप (राजा) हार गये तो आपको मेरा प्रभुत्व मानना होगा। शर्त मंजूर हुई। चौसर का खेल खेला गया। राजा हार गया। तब राजा ने उससे अपना आदेश देने को कहा। तब उस पुरुष ने कहा कि आपने जो ढोल के अन्दर माहूंनाग की मूर्ति बंद कर रखी है उसे मेरे हवाले कर दो। लेकिन राजा मूर्ति देने के लिए आनाकानी करने लगा। फलत: एकाएक माहूंनाग की मूर्ति ढोल को फाड़कर आकाश में उड़ गई तथा उड़कर सैंदल से दो-तीन मील उपर एक झाड़ी के समीप पहुंच गई। यह सब देखकर राजा व अन्य लोग आश्चर्यचकित रह गये तथा राजा अपनी हार स्वीकार कर माहूंनाग से क्षमायाचना करने लगा। वहां पर गांव के लोगों ने एक छोटे से मन्दिर का निर्माण किया जिसे अब भी माहूंनाग की 'देहरी' (देवालय) कहा जाता है। उस देहरी के थोड़ा नीचे लोगों ने एक मन्दिर का निर्माण करके माहूंनाग की मूर्ति को ज्येष्ठ की संक्रान्ति के दिन विधिवत् स्थापित कर दिया।

उसके बाद माहूंनाग राजा श्यामसेन को अपने क्षेत्र में प्रविष्ट नहीं होने देता था। राजा श्यामसेन ने माहूंनाग के सम्मान के लिए सुन्दरनगर में मेलों का आयोजन किया तथा चैत्र के नवरात्रों में माहूंनाग को विशेष अतिथि के रूप में निमंत्रित किया। उसके पश्चात् अब भी हर साल चैत्र के नवरात्रों में माहूंनाग सुन्दरनगर जाता है। वहां छः-सात दिनों तक लगे देवमेलों में वह मुख्य अतिथि होता है। अष्टमी के दिन राजघराने की तरफ से सभी देवी-देवताओं को सम्मान हेतु चादरे चढ़ाई जाती हैं। माहूंनाग को चादर चढ़ाने के लिए राजघराने का कोई न कोई व्यक्ति अवश्य उपस्थित रहता है।

माहूंनाग की धमुनी नाग से लड़ाई– माहूंनाग के मन्दिर से नीचे पांच-छः मील की उतराई पर चेंअरा स्थान है। लोककथाओं के अनुसार एक बार माहूंनाग व समीपवर्ती धमुनी नाग की परस्पर लड़ाई हो गई। धमुनी नाग माहूंनाग की धार (घाटी) को नीचे गिराने लगा। तब धार के नीचे चेंअरा में माहूंनाग ने अपने गज को गड़ाकर अपनी धार को नीचे गिराने से रोका तथा धमुनी नाग को एक अखरोट मारकर उसकी एक आंख फोड़ दी। अब भी धमुनी नाग एक आंख वाला है। चेंअरा में जिस स्थान पर माहूंनाग ने गज गड़ाया था वहां पर भी माहूंनाग का

मन्दिर बनाया गया है। इस मन्दिर के साथ ही एक प्राकृतिक डवार (गुफा की तरह) है जहां पर यात्री ठहरते हैं तथा हर सक्रान्ति को यहा पर भी माहूंनाग की पूजा की जाती है। यहां पर भी लोग मनौतियां लेकर आते रहते है। यहां पर भी माहूंनाग का एक गूर (चेला) होता है।

गूर का चुनाव—माहूंनाग के मुख्य गूर के लिए कुछ नियम—संहिता होती है। माहूंनाग का मुख्य गूर, बनाने के पश्चात् शादी नहीं कर सकता। वह चमड़े के जुत्ते नहीं पहन सकता। घास की बनी पुलें उसे पहननी पड़ती हैं। वह किसी भी दरिया से पार नहीं जा सकता। किसी भी प्रकार का व्यसन नहीं कर सकता गूर को हर समय धोती पहननी पड़ती है। वह सिर के बाल नही कटवा सकता। गूर चुनाव के समय लोगो में से जिस किसी को भी 'माहूनाग' की खेल आती है उसको ही गूर बनाया जाता है। गूर बनने से पहले प्रत्याशी को सतलुज में छलांग लगाकर पानी के नीचे से दोनों मुठिट्यों में रेत भरकर लानी होती है। इस समय ढोल—नगारे वाले प्रत्याशी गूर के साथ होते हैं। इस प्रकार माहूंनाग का गूर हिंगरते हुए रेत लेकर माहूंनाग के मन्दिर पहुंचता है तथा उस रेत को मन्दिर में रखता है।

माहूंनाग से चार किलोमीटर पीछे माहूंनाग का ओडा है। यहां से माहूंनाग की सीमा लगती है। यहां का रास्ता केलों, कायल के जंगलों से आच्छादित है। ओडे के पास ही माहूंनाग की सीमा लगती है। यहां का रास्ता केलो, कायल के जंगलों से अच्छादित है। ओड़े के पास ही माहूंनाग की छोटी सी देहरी है। कहा जाता है कि प्राचीन समय में ओड़े से आगे कोई भी जूते वगैरा नहीं ले जाते थे। अब माहूंनाग की आज्ञा लेकर, डांड देकर (माहूंनाग के नाम पर पैसे रखकर) जूते वगैरा मन्दिर के बाहर तक ले जाते हैं। माहूंनाग का जन्म दिन सावन प्रविष्टे तीन को मनाया जाता है। इस दिन भी माहूंनाग के मन्दिर के समीप मेला लगता है। सावन के महीने में हिमाचल के कई स्थानों पर नाग-पूजा होती है तथा मेले लगते हैं।

माहूंनाग का प्रभाव फल—माहूंनाग के छोटे-छोटे देहरे (मन्दिर) करसोग क्षेत्र में कई जगह बने हुए हैं। यहां के विश्वास के अनुसार जब भी किसी को कभी कोई सांप काट देता है उस आदमी को माहूंनाग की देहरी में तीन दिन तक रखा जाता है तथा माहूंनाग की श्रद्धाभाव से मनौती की जाती है। उस आदमी का जहर अपने आप ही माहूंनाग की कृपा से उतर जाता है। आज तक करसोग क्षेत्र में ऐसी कोई भी घटना नहीं घटी है। कि माहूंनाग की देहरी पर रखने से कोई सांप का काटा आदमी मृत्यु को प्राप्त हुआ हो। माहूंनाग के मेले में लोग दूर-दूर से मनौतियां लेकर आते हैं। माहूंनाग का गूर हिंगरते (खेलते) समय अपनी भाषा में पहले गण देता है जिसमें वह अपने जन्म तथा यश की कथा बोलता है।

माहूंनाग का धूना—कितने ही वर्षों से प्रज्जवलित माहूंनाग का धूना कभी भी नहीं बुझता है। कहा जाता है कि जबसे माहूंनाग का मन्दिर बना है तब से आज तक यहां पर रात-दिन अग्नि प्रज्जवलित रहती है। यहां के लोगों का कहना है कि कभी यह धूना बुझ जाए तो करसोग में शिवजी के मन्दिर से किसी बर्तन में आग लेकर तथा बकरे के सींग पर उस बर्तन को रखकर माहूंनाग के मन्दिर में पहुंचाया जाता है तब उस आग से दुबारा अग्नि प्रज्जवलित की जाती है। सींग पर आग लाने वाले बकरे की बलि दे दी जाती है। इस धूने से ही लोग माहूंनाग की विभूति ले जाते हैं जो श्रद्धालुओं के अनेक कष्टों का निवारण करती है।

माहूंनाग का मन्दिर—लकड़ी और पत्थरों से बनाया गया यह मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। जो इस मन्दिर के चढ़ावे के पैसे वगैरा हैं वे कमेटी में जमा हो जाते हैं तथा इस मन्दिर के निर्माण में ही लगाये जाते हैं। पहले माहूंनाग के मन्दिर तक पैदल ही जाना पड़ता था लेकिन अब मन्दिर के थोड़ा नीचे तक बस जली जाती है। यहां तक सड़क बनवाने में भी माहूंनाग का पैसा ही ज्यादा लगाया गया है। इस मन्दिर के प्रधान वगैरा बनाये गए हैं जो कि इस मन्दिर के प्रबन्धकर्ता हैं। इस मन्दिर की ईमारत में ही एक ओर डिस्पेन्सरी पटवारखाना तथा अतिथि-गृह भी है। माहूंनाग की मान्यता दूर-दूर तक फैली हुई है तथा जो भी लोग मनौतियां लेकर आते हैं वे ही इसकी सम्पति है तथा इसके अतिरिक्त मन्दिर के इर्द-गिर्द की थोड़ी-बहुत जमीन भी माहूंनाग की ही है। इस नाग का गूर वेतन भोगी न होकर पारस्परिक ही है।

पाल भवन संजौली
शिमला-171 006

कांगड़ा घाटी का एक अद्भुत तीर्थ

□ रमेश चन्द मस्ताना

धौलाधार की तराई में स्थित, सुरम्यों दृश्यों से भरपूर कांगड़ा घाटी का अपना विशेष महत्व है। कांगड़ा घाटी की चप्पा-चप्पा भूमि अपनी धार्मिक महत्ता को संजोए हुए है। यहां पर जगह-जगह बने देवी-देवताओं के मन्दिर, लोकदेवताओं की स्थापना यथा—पीर का थड़ा, थान की मढ़ियां आदि एवं पीपल एवं बट वृक्षों के नीचे रखे हुए मूहरे एवं अन्य पाषाण मूर्तियां यहां के जनमानस की आस्था के प्रतीक हैं यहां के लोगों की इन देवी-देवताओं के प्रति इतनी श्रद्धा एवं मान्यता है कि वह अपने प्रत्येक कष्ट का निवारण उन्ही की शरण में जाकर पाते हैं, और साथ ही साथ अपनी प्रत्येक खुशी को उनके सामने नतमस्तक होकर बांटते हैं। इसी धार्मिक प्रवृति के कारण इस कांगड़ा घाटी को मन्दिरों एवं देवी-देवताओं की घाटी कहा जाता है।

कांगड़ा घाटी में जहां ब्रजेश्वरी देवी, नंदिकेश्वर धाम, कुनाल-पत्थरी, ज्वाला जी आदि इतिहास प्रसिद्ध एवं मान्यताओं से भरभूर देवियां हैं, वहां इस घाटी के आचल में अभी तक कई ऐसे तीर्थ स्थापित हैं, जिन्हें पर्यटन की दृष्टि से इतना विकसित नहीं कहा जा सकता। यह अभी तक मात्र अपने निकटवर्ती एवं नजदीकी क्षेत्र के जनमानस को अपनी पूजा-अर्चना का माध्यम से बना सके हैं। परन्तु फिर भी जहां इनकी मान्यता एवं कृपा दृष्टि का प्रश्न है, यह अपने लघु रूप में भी सबके प्रिय बन चुके हैं। कांगड़ा घाटी के आंचल में स्थिन मच्छियाल नामक तीर्थ-स्थान इसी प्रकार का एक तीर्थ है।

कस्बा रैत से लगभग सात किलोमीटर नीचे की ओर रैत सलोल सड़क पर योल-झरेड़ नामक गांव में यह तीर्थ स्थान स्थित है। चार किलोमीटर सड़क पक्की होने के कारण अब मच्छियाल तक दो तीन बसें चलती हैं। परन्तु इन बसों का मच्छियाल तीर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं माना जा जा सकता फिर भी सड़क बन जाने से इसकी महत्ता दिन-प्रतिदिन बढ़ ही रही है।

मच्छियाल नामक इस छोटे से स्थान पर लगभग छः सात तीर्थ एक साथ ही है, और उन सभी का अपना-अपना महत्व एवं मान्यताएं हैं। एक छोटे से खो (छोटा-नाला) के बहते पानी का

एक तालाब सा है, और उस तालाब के किनारे पक्के सपड़ों पर तीर्थ स्थान स्थित है, चो का पानी लगभग पच्चीस फुट की ऊंचाई से गिरता है, जिसके कारण नीचे का तालाब काफी गहरा है। कुछ वर्ष पूर्व सड़क का पुल का निर्माण होने से खुदाई की रेत आदि से यह तालाब कुछ भर गया था, अन्यथा पहले तो यही माना जाता था कि बड़े बड़े अनुभवी गोताखोर ही उसकी सतह तक पहुंच पाते थे बाकी लोग वैसे ही तैर कर नहाते एवं आनन्द उठाते थे।

जैसे की 'मच्छियाल' नाम से इस तीर्थ की सार्थकता सिद्ध हो जाती है, अर्थात यह मच्छलियों की आल अर्थात तालाब है। यहां पर पहले बहुत बड़ी-बड़ी एवं भारी मात्रा में मच्छलियां थी, परन्तु दुर्भाग्यवश उन्नीस सौ पचहत्तर में भारी ओलावृष्टि के प्रकोप से भारी मात्रा में ओले बहकर आल में इक्कठे हो गए। और उनके विष से कुछ एक मच्छलियां ही बच पाई थी, शेष सब मर गई थी। परन्तु अब पुनः मच्छलियां तैयार हो गई हैं। पुरानी मच्छलियों में एक सबसे बड़ी मच्छली थी, जिसे रानी मच्छली कहा जाता था। यह रानी मच्छली बहुत ही कम सपड़ों की खोह में से बाहर निकलती थी। एक बार एक स्त्री ने उससे पुत्र रत्न प्राप्ति हेतु प्रार्थना की। जब उसकी मनोकामना पूरी हो गई तो उसने उस रानी मच्छली को सोने की नथनी पहनाई थी। इसके उपरान्त वह रानी मच्छली बहुत ही भाग्यशाली व्यक्ति को दर्शन देती थी।

तालाब की सीमा के भीतर किसी को भी इन मच्छलियों को मारने की आज्ञा नहीं है, और यदि कोई मच्छली सीमा से बाहर निकल जाए तो उसे मारने में कोई हर्ज नहीं माना जाता है। यदि कोई व्यक्ति तालाब के अन्दर ही मच्छली को पकड़े और खा जाए, तो उसे पेचिश लग पड़ते हैं। यह पेचिश इलाज करने पर बढ़ते ही जाते हैं और आदमी को अपनी जान से भी हाथ धोने पड़ते हैं।

प्रत्येक मगलवार और शनिवार के दिन दूर-दूर से लोग आकर मच्छलियों को आटे की या भूने हुए चनों की 'चोग' खिलाते हैं और अपनी-अपनी मनौतियां मनवाने की प्रार्थना करते हैं। तालाब में स्नान करना भी पुन्य समझा जाता है। गंगा-स्नान की भांति तालाब में स्नान करके लोग अपने दुःख-दरिद्रों का निवारण करते हैं। इन मच्छलियों की सबसे अद्भुत विशेषता यह है कि चोग खाने के पश्चात् यह सभी मच्छलियां, चोग डालने वाले की प्रार्थना पर बिल्कुल एक गोल दायरे में दाहिनी ओर को चक्कर काटती हैं। दाहिनी ओर का यह चक्कर मनौती पूर्ण होने का संकेत माना जाता है। यदि मच्छलियां गोल चक्कर में न घूमें या बायीं ओर को अर्थात उल्टा चक्कर लगाएं तो प्रार्थना पूरी नहीं होती है। गोल दायरे में चक्कर लगाते समय कोई भी मच्छली बीच में आर-पार नहीं जाती है। कई बार बच्चे नहाते हुए इन मच्छलियों को पकड़ कर हाथों में उठा भी लेते हैं।

तालाब के ऊपर पत्थके सपड़ पर पीपल के नीचे एक शिवलिंग स्थापित है। यह शिवलिंग पहले खुले रूप में ही बिना मन्दिर के ही था। परन्तु कुछ वर्ष पहले वहां के ही एक निवासी ने शिवलिंग के आगे प्रार्थना की थी कि यदि उसके घर पुत्र-रत्न की प्राप्ति होगी तो वह वहां पर मन्दिर बनवा देगा। एक वर्ष के भीतर ही उसे पुत्र-रत्न की प्राप्ति हो गई, और उसने खुशी-खुशी वहां पर मन्दिर बनवाया था। शिवरात्रि एवं बसन्तपंचमी के दिन यहां पर बहुत बड़ा मेला लगता है। दूर-दूर से लोग आकर स्नान करके, मच्छलियों को चोग डालकर एवं शिवलिंग के दर्शन कर अपने को कृत-कृत्य मानते हैं।

मन्दिर के निकट ही दो सपड़ों के बीच एक छोटी सी गुफा है। उस गुफा के सम्बन्ध में एक किवदन्ती प्रचलित है कि प्राचीन काल में उस गुफा में शिवजी एवं पार्वती निवास करते थे। परन्तु यह दोनों मात्र शिवलिंग के माध्यम से अपने करिश्मे दिखलाते थे, और श्रद्धालु जनों की मनों-कामनाएं पूर्ण करते थे, और अपने आप सामने नहीं आते थे। एक दिन अचानक ही किसी व्यक्ति ने उन्हें गुफा के अन्दर बैठे हुए देख लिया, और वह उन्हें देखकर चकित हो गया। इससे एक ओर जहां वह उनके साक्षात दर्शनों से कृत-कृत्य हो गया, वहां दूसरी ओर शिवजी एवं पार्बती जी दोनों वही पर अन्तर्धान हो गए, और दूसरे ही क्षण उसे गुफा खाली दिखाई पड़ी। उसके बाद वह किसी को भी उस गुफा में दिखाई नहीं दिए।

मन्दिर के निचले छोर पर पानी के दो छोटे-छोटे चश्मे हैं, जहां से सारा साल भर पानी निकलता रहता है। चाहे कितनी भी गर्मी क्यों न पड़े, इन चश्मों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। यहां से ही लगभग आधा गांव पानी भरता है। किसी भी प्राकृतिक प्रकोप के समय यहां पर जग जातर या हवन इत्यादि का आयोजन किया जाता है। लोग अपनी-अपनी श्रद्धानुसार अन्न एवं धन देते हैं, और शिवलिंग का समक्ष पूजा-पाठ किया जाता है। शिवजी के खुश होने पर वह प्रकोप निश्चय ही टल जाता है। और पिछले समय में हुए जग एवं सूखे के उपरान्त हुई वर्षा शिवजी के प्रसन्न होने एवं लोगों की आस्था- विश्वास का पता चलता है।

यहां पर साथ ही 'चो' के किनारे पर श्मशान घाट भी है, जहां पर पूरे गांव के मुर्दे जलाये जाते हैं। लेकिन यह श्मशान भी अन्य श्मशानों की अपेक्षा अपनी अलग ही विशेषताएं: लिए हुए हैं। अन्य श्मशानों की किवदन्तियों की भांति यहां पर किसी प्रकार की भी कोई अप्रिय घटना नहीं हुई है। अन्य श्मशानों में कभी-कभी किसी को कोई न कोई मृत आत्मा भूत-प्रेत रूप में अवश्य मिलती हैं या तंग करती हैं, परन्तु इस श्मशान घाट पर या इसके नजदीक चौबीसों घण्टे कोई भी स्त्री-पुरुष बच्चा या बूढ़ा नि:सकोच रूप से घूम सकते हैं। आज तक वहां पर कोई भी किसी प्रकार की अप्रिय घटना अभी तक नहीं हुई है और न ही किसी प्रकार की कोई छाया इत्यादि किसी पर नहीं पड़ी है। यहां तक कि यदि रात्रि के समय मुर्दा जल भी रहा हो तो भी वहां पर कोई व्यक्ति या बच्चा अकेले जा सकता है।

मच्छियाल के इसी चो का पानी नीचे कुछ दूरी पर जाकर एक जल प्रपात का रूप धारण कर लेता है। यह जलप्रपात लगभग तीन सौ फुट ऊंचाई से गिरता है, और इसकी तीव्र गति एक सुंदर दृश्य बना देती है। वनस्थली एवं दोनों ओर ऊंचे पत्थरों के पहाड़ों के बीच में गिरता यह जल प्रपात वहां के सौन्दर्य में चार चांद लगा देता है। यह जलप्रपात भी नीचे इतना गहरा है कि इसकी सतह का आज तक कोई भी पता नहीं लगा सका है। जहां यह जल प्रपात अपने सौन्दर्य को बनाए हुए हैं, वहां कुछ व्यक्तियों ने इसे आत्महत्या के द्वारा दूषित भी किया है, परन्तु यह तो मनुष्य की अपनी कमजोरी, कायरता या स्वार्थ लोलुपता ही कही जा सकती हैं।

इस प्रकार इस मच्छियाल नामक तीर्थ स्थान पर वरुण-देवता के साथ-साथ अन्य कई देवी-देवता हैं, जिनके कारण तीर्थ स्थान अपने छोटे एवं सीमित क्षेत्र में भी अपनी व्यापकता को बनाए हुए हैं। मच्छलियों का चोग खाना, एवं उसके उपरान्त एक गोल दायरे में दाहिनी ओर को घूमना—- जहां एक सुन्दर दृश्य उत्पन्न करता हैं, वहां वह दूसरी ओर अपने श्रद्धालु जनों को दुआएं देती जान पड़ती हैं। मच्छलियां तो प्राय: कई तालावों में पाली हुई होती हैं, परन्तु मनोकामनाओं की पूर्णत: का संकेत देती हुई यह मच्छलियां अपनी ही एक अलग विशेषता लिए हुए हैं। इस प्रकार कांगड़ा घाटी का यह अद्‌भुत तीर्थ अपनी धार्मिकता को संजोए यहां के जनमानस की श्रद्धा का आधार एवं आस्था का प्रतीक बना हुआ हैं।

सचिव, पश्चिमी क्षेत्र,
(कांगड़ा लोक साहित्य परिषद, पंजीकृत),
नेरटी, कांगड़ा, हि० प्र० 176 208

बनिया देवी

अर्की जनपद का लोकप्रिय मेला

□ शंकर लाल शर्मा

अर्की से ग्यारह किलोमीटर दूर कुन्हन मार्ग पर बनियादेवी गांव है। यहां पर दस भुजा महाकाली का प्राचीन ऐतिहासिक मंदिर है। इस स्थान पर ज्येष्ठ मास की सक्रांति को एक मेला लगता है। इस क्षेत्र में लगने वाला यह नव वर्ष का प्रथम मेला है। इस समय तक किसान गेहूं जौं आदि की फसल समेट चुके होते हैं और मक्का-धान की बीजाई के लिए तत्पर होते हैं।

इस स्थान का नाम 'बनियादेवी' संभवतः वन देवी का बिगड़ा रूप है। लोग कहते हैं कुछ समय पूर्व यहां बहुत घना वन था। उस समय ज्येष्ठ मास में भी यहां वातावरण इतना ठंडा होता था कि धूप ढूंढनी पड़ती थी। अब यहां घना वन तो नहीं है परन्तु पीपल, शीमल व चढ़ीनू के काफी पुराने तथा बड़े पेड़ विद्यमान हैं। ये पेड़ इस बात का प्रमाण है कि यहां मंदिर के आस पास बहुत घना वन रहा होगा।

अर्की धार की पश्चिमी ढलान पर बसा यह एक मनोहर स्थल है। यहां का जल स्त्रोत प्राकृतिक एवं बहुत सुन्दर है। राजाओं के जमाने में बाघल नरेश का परिवार पीने के लिए यहीं से जल मंगवाता था।

पहाड़ी ढलान की तराई के आंचल में पक्का मन्दिर है। मंदिर की पृष्ठभूमि में इधर-उधर वन हैं। ठीक सामने नीचे सीढ़ीनुमा खेतों का विस्तार खेतों का सिलसिला मंदिर के पास ही से शुरु हो जाता है। उत्तर की ओर घरनो गांव तथा दक्षिण की ओर जावलू गांव। मंदिर का मुख्य द्वार पश्चिम की ओर है। चारों ओर ऊंचा प्रकोष्ठ है। दक्षिणी भाग में सरायें तथा कुटिया बनी है। मुख्य मंदिर शिखर शैली में चौकोर आधार पर निर्मित है। एक शिला खंड पर शेर के वाहन पर दुर्गा की मूर्ति उत्कृत है। मूर्ति में कुछ टूट-फूट एवं दरारें पड़ गई हैं। यह मूर्ति कला का सुन्दर नमूना है। कलाकार ने बड़े मनोयोग से शिला खंड को मूर्त रूप में प्रस्तुत करने में पूर्ण दक्षता का परिचय दिया है। आंखों को धातु की पत्तियों से चमत्कृत किया गया है।

बाहर प्रांगण से देखने पर मूर्ति का मुख मण्डल ही देखा जा सकता है। शरीर का शेष भाग आवरणों एवं आभूषणों से ढका रहता है। लोग कहते है कि यह शिला खंड नीचे धरती में

बहुत गहरा दबा पड़ा है। मंदिर प्रकोष्ठ में भीतरी दीवार पर बने आलों में कई देव मूर्तियां स्थापित हैं।

मंदिर के सामने दालान में दाहिनी और भैरव, योगिनी और हनुमान की चौकियां बनी हैं। भैरव तथा योगिनी तो दुर्गा माता के गण होने के कारण द्वारपाल और क्षेत्रपाल के प्रतीक हैं। परन्तु इनके साथ हनुमान की मूर्ति किसी भक्त ने बाद में स्थापित कर दी होगी। क्योंकि हनुमान का दुर्गा मंदिर में गण अथवा द्वारपाल होना संगत नहीं बैठता। भैरव व योगिनी को स्थानीय लोग 'लाउंकड़ा' तथा 'लाउंकड़ी" के नाम से बेहतर जानते हैं।

यहां लोगों में यह धारणा है कि यह दुर्गा मूर्ति अपवन्नी अर्थात स्वनिर्मित है। इस मूर्ति के प्राप्त होने के बारे में जनश्रुतियों के आधार पर अनेक लोक विश्वास प्रचलित हैं। एक जनश्रुति के अनुसार प्राचीनकाल में कभी बड़ा गम्भीर अकाल पड़ा था। अन्न जल के अभाव में प्रजा में त्राहि-त्राहि मच गई। लोग बाघल नरेश की शरण में संकट से उबरने की आशा लेकर पहुंचे। इस चिन्ताजनक स्थिति से राजा साहब स्वयं बड़े चिन्तित थे। राजदरबार में विचार विमर्श हुआ। विद्वानों ने निर्णय किया कि राजा साहब स्वयं हल-चलाएं तो वर्षा हो सकती है। राजा साहब तैयार हो गए। इस महायज्ञ की तैयारी की गई। गांवघरनों में एक स्थान हल चलाने के लिए चुना गया। हल चलाते समय राजा साहब को एक मूर्ति मिली। यज्ञ पूरा तो हुआ खूब बर्षा हुई। प्राप्त हुई मूर्ति को प्रतिष्ठित किया गया। राजा साहब इस दुर्गा मूर्ति को अपने राजमहल में स्थापित करना चाहते थे। परन्तु मूर्ति शिला बहुत बड़ी तथा भारी होने के कारण विचार त्यागना पड़ा। इसी स्थान पर मंदिर बनवाया। फिर हर वर्ष राजा साहब अपने दल-बल सहित ज्येष्ठ मास की संक्राति को यहां आते रहे। कुछ दिन यहीं रह कर लोगों के झगड़ों का निपटारा करते, उनकी दुख: तकलीफ सुनते। यहां पर एक दीवानाखाना बनवाया तथा ठहरने की पूरी व्यवस्था की गई। इस तरह यहां मेले की नींव पड़ी। इस देवी प्रतिमा को राजा साहब अपनी ईष्ट देवी कुलजा मान कर पूजते रहे। राजा शासन प्रणाली के समाप्त होने पर भी मेला मनाने का वही उत्साह एवं आस्था यहां के लोगा में विद्यमान है।

दूसरी जनश्रुति के अनुसार इस गांव में चन्देल राजपूत रहते थे उसमें से कोई किसान नया खेत खोदने के विचार से इस स्थान पर आया। खुदाई करते-करते एक स्थान पर चिउटियों का एक बड़ा दल निकला। किसान ने उनकी जरा भी परवाह न की। कुछ देर बाद वहां से दूध की धारा निकली। किसान की उत्सुकता बढ़ गई। दूध निकलने पर भी वह रूका नहीं, सतत खोदता रहा। अचानक किसान के एक प्रहार के साथ ऊंची भयातुर चीख सुनाई दी। सामने खून की धारा बह निकली। चीख सुनकर तथा रक्त देखकर वह किसान डर गया। अपने औजार आदि

वहीं छोड़कर गांव की ओर भाग खड़ा हुआ। उसकी बात सुनकर गांव से लोग वहां पहुंचे। पत्थर की एक शिला पर दुर्गा की मूर्ति के अतिरिक्त वहां कुछ भी न था। इसे पत्थर मानकर सभी ने उस किसान का मज़ाक उड़ाया। फिर इस विषय पर चर्चा करते हुए सभी घर लौट आए।

दैवयोग से उस दिन गांव में न तो कोई भोजन कर सका और न ही सो सका। सभी खाद्य वस्तुओं में रक्त नज़र आता था। सोते ही भयंकर चीख पुकार सुनाई देती। दूसरे दिन यह बात राज दरबार में पहुंच गई। तथ्यों की जांच पड़ताल हुई। मगर अन्य लोगों कोकुछ भी स्पष्ट न हुआ। केवल यहां के ग्रामवासी ही परेशान थे। अन्त में विद्वानों की सलाह ली गई। दुर्गा माता को नाराज़ किया गया था। इस क्रोध से बचने का एक ही रास्ता था, गांव को त्याग देना। तब ये लोग मोहल, कलाहरन आदि गांवो में जा बसे। इन लोगों के यहां से चले जाने के बाद यह क्षेत्र विरान हो गया। बहुत समय बीत जाने के बाद नम्होल के निकट एक गांव ध्याल से एक ब्राह्मण परिवार यहां आकर बस गया जिसके वंशज वर्तमान घरनों गांव के निवासी हैं। इन लोगों ने यहां दुर्गामाता की मूर्ति को प्रतिष्ठित किया और मानते पूजते हे। बाघल के राजा साहब से मंदिर बनवाकर मेले की परम्परा चलाई।

तीसरी जनश्रुति के अनुसार कहा जाता है की बाघल की राजधानी धुन्दन थी। किसी कारणवंश रसोई में पके भोजन में विष मिलाकर राजा परिवार को मारने का षड़यन्त्र किया गया। उस दिन राज पुरोहित अच्छुदेव कहीं वाहर गए हुए थे। राजकुल के लोगों को भोजन का बुलावा आया तो अपने योगबल से अच्छुदेव को विष का ज्ञान हो गया। वे तो दूर थे और समय बहुत कम था। उन्होंने जान लिया कि भोजन करते ही सारा राज परिवार समाप्त हो जाएगा। योग विद्या से उन्होंने मोई (सुहागा) को अपना वाहन बनाया और उस पर बैठ कर उड़ चले। पंगत में भोजन परोसा जा चुका था। जब अच्छुदेव उतरने लगे तो उन्होंने अपना एक जूता बीच पंगत में फेंक दिया। जूता देखकर सभी क्रोधित हुए और भोजन छोड़कर सभी खड़े हो हो गए। यह न केवल राज अपमान था अपितु राज सत्ता को खुली चुनौती थी। अच्छुदेव से सारी बात सुनकर सभी बड़े प्रसन्न हुए। परन्तु इस बीच छोटी राजकुमारी भीतर भोजन कर चुकी थी और वहीं ढेर हो गई थी।

कन्या हत्या के कारण राजधानी बदलनी पड़ी। वनियादेवी क्षेत्र को नई राजधानी के लिए चुना गया। यहां खुदाई करते समय दुर्गा माता की प्रतिमा मिली। साथ ही राजा साहब को सपना मिला कि राजधानी यहां न बनाएं। शकनी (अर्की) के सामने चट्टानों पर राजमहल का निर्माण करें। तब अर्की राजधानी बनी। राजा साहब ने यहां मंदिर बनवाया और दुर्गा माता की प्रतिमा को उसमें स्थापित किया।

चौथी जनश्रुति के आधार पर इस स्थान पर अनादिकाल से मां दुर्गा की स्थापना थी। कालान्तर में यहां इस देवी की पुजारिन चिन्ती ही रह गई। उसके नाम पर मंदिर के पीछे काफी ऊपर एक जल स्त्रोत है जिसे आज भी 'चिन्तिआ रा पंणिहार कहते हैं। जब यह वृद्धा भी मर गई तो यहां पूजा करने वाला कोई न रहा। धीरे-धीरे यह स्थान वीरान पड़ गया। कच्चा मंदिर गिर गया तथा मूर्ति दब गई। बाघल के निःसन्तान शासक मृत्यु के बाद अभी उत्तराधिकारी का निर्णय नहीं हुआ था कि गोरखों ने मौके का लाभ उठा कर सन् 1805 ईस्वी में बाघल पर अधिकार कर लिया। गोरखों ने अर्की धार पर अपना गढ़ बनाया। इसी प्रकार के कई छोटे छोटे गढ़ कई अन्य पहाड़ियों पर भी बनाए। इन गढ़ों में गोरखा सैनिक रहते थे। वे जब तब लूट मार करते रहते थे। यहां का शासन वे चला नहीं पाए। इसी दौरान एक किसान को दबी हुई यहां की मूर्ति मिली। यह खबर गोरखा गढ़ में भी पहुंची। गोरखे यहां आए। उन्होंने एक छोटा सा मंदिर बनवाया और चांदी की एक बड़ी मेहल (हार), जिसकी लड़ियों में चांदी के रूपए तथा बीच में बड़ा चन्दोवा है, भेंट दिया।

बाघल पर जब फिर परमार वंश के शासकों का कब्जा हुआ तो उन्होंने इस मूर्ति को अर्की राजमहल में ले जाने का प्रयास किया। परन्तु शिला बड़ी एवं भारी होनें के कारण वे इसे ले न जा सके। उन्होंने फिर यहीं पर पक्का मंदिर बनवाया। वर्तमान मंदिर इन्हीं शासकों का बनवाया हुआ है। पूजा के लिए पुजारी रखा गया। रात के समय भयभीत वह पुजारी भाग गया उसके बाद जिसे भी रखा जाता भाग जाता। विद्वानों एवं पंडितों की सलाह तथा निर्देश पर मंदिर के प्रांगण में एक थड़े पर पांच कन्याओं को बैठाया गया। पानी भरी कांस्य थालियों तथा डमरूओं के नाद पर उन्हें देवछाया आई। उन्होंने देववाणी में राजा को आदेश दिया कि चिन्ती पुजारिन के किसी कुलीन ब्राह्मण को यहां का पुजारी नियुक्त किया जाए। चिन्ती पुजारिन के कुल के ब्राह्मण म्याणा (धुन्दन) गांव में भी रहते थे। वहीं से एक ब्राह्मण को यहां जाबल् गांव में चालीस बीघे भूमि सासण (बिना लगान) भेंट दी। उसी के बंशज आज भी सुबह शाम नियमित रुप से मंदिर में पूजा करते हैं। इसी प्रकार कुछ जमीन बिना लगान मंदिर में सेवा सफाई के लिए एक जोगी परिवार को दी गई थी।

वर्तमान मेले में दाड़ला से गणदेव का देव रथ यहां लाया जाता है। यह देवरथ सक्रांति की पूर्व संध्या को मोहल गांव आ जाता है। दूसरा देवरथ बखालग के शिव मंदिर से शिव पंचायत का पहुंचता है। शिव पंचायत में ब्रह्मा, विष्णु, गणपति तथा दुर्गा की मूर्तियां होती हैं। तीसरी देव प्रतिमा गांव सेरी से नृसिंह की लाई जाती है।

राज प्रांगण के पक्के चबूतरे पर देव नृत्य होता है। आर-पार ढलानों पर बैठ कर लोग इस नृत्य को देखते हैं। विभिन्न वाद्य यन्त्रों की विशेष धुनों पर यह नृत्य चलता है। यह कार्यक्रम सायंकाल होते समाप्त कर दिया जाता है। रात को कीर्तन भजन होता है जो दूसरी सुबह तक चलता है।

इस मेले के अवसर पर लोग मुख्य मंदिर में नया अन्न चढ़ाते हैं। इसे 'नवीनेह का पुजावा' कहते हैं : ऐसी मान्यता हैं कि इस क्षेत्र के हर परिवार से लोग इस दिन यहां अवश्य आते हैं। इस मेले को बाघल शासकों की मान्यता रही है। गोरखों ने भी अपने प्रभाव काल में इसे संरक्षण दिया।

आज यह स्थल जीर्ण शीर्ण अवस्था में है। सरकारी अनुदान एवं स्थानीय लोगों के समुचित रूचि सहयोग से यहां पर्याप्त सुधार लाया जा सकता है। इस स्थल को पर्यटन की दृष्टि से विकसित किया जाना चाहिए।

गांव व डाकघर मांजू, वाया अर्की
जिला सोलन, हि. प्र. 173 208

दिल्ली कवि सम्मेलन में पढ़ा गया।

हिमाचल प्रदेश का हिन्दी उपन्यास साहित्य : एक परिशीलन

□ दिनेश धर्मपाल

मुन्शी प्रेम चन्द से ही हिन्दी में उपन्यास बिधा का शुभारम्भ मानना युक्ति संगत होगा। उनसे पूर्व जो कुछ भी उपन्यास-क्षेत्र में हिन्दी में लिखा गया, उसमें मानव के सामाजिक-जीवन की सही अभिव्यक्ति ठीक से उतर नहीं पाई थी। हल्के-फुल्के मनोरंजन, कुतूहल और चमत्कार से इस विधा को ऊपर उठाने का श्रेय उन्हीं को जाता है। उन्होंने उपन्यास को प्रथमतः सामाजिक जीवन के साथ एकाकार करने का प्रयत्न किया था। सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि और गोदान जैसी कृत्तियों के माध्ययम से हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक नये युग का प्रादुर्भाव किया।

प्रेमचन्द के उपन्यासों के कथावृत्त का उत्स मानवीय शोषण को उसके तरह-तरह के मुखोटों में प्रदर्शित करना रहा है। उनकी औपन्यासिक कृत्तियों में सामाजिक जीवन की कुरीतियां, कुप्रथाएं और कुण्ठाएं विशेषकर मध्यमवर्ग और निम्न मध्यम वर्ग की कुण्ठाएं अपने पूरे उभार के साथ प्रस्तुत हुई हैं। कृषक जीवन का जितना साफ सुथरा और जीवंत खाका उन्होंने खींचा है, उसका पूरे हिन्दी साहित्य में कोई सानी नहीं दिखता। नगरीय और ग्रामीण परिवेश का जैसे उन्होंने तुलनात्मक स्वरूप ही चित्रित कर रखा है जिसके विश्लेषण के द्वारा हम इन दोनों में व्याप्त अच्छाइयों, बुराइयों, विसंगतियों की परख कर सकते हैं और उन संकटों के प्रति भी सचेत रह सकते हैं, जिनके आस्तित्व में रहते दोनों का कायाकल्प होना एक दुर्भर कार्य है। समाज के दबे लोगों पर होने वाले अत्याचारों और शाश्वत मूल्यों में होते ह्रास के क्रम को तो उन्होंने अपने उपन्यासों की कथा वस्तु बनाया ही है, साथ ही उन्होंने परिवर्तन की प्रक्रिया को आधार बनाकर अपनी धारणों को मजबूती के साथ उद्घाटित किया है। निस्संदेह प्रेमचन्द की इस परम्परा का हिमाचल के हिन्दी उपन्यास के संदर्भ में गर किसी एक व्यक्तित्व द्वारा ठीक-ठीक निर्वहण हो पाया है, तो वह एकल व्यक्तित्व यशपाल का है, जिन्हें दो-तीन दशाब्दियों तक तो हिमाचल के लेखन पट्टल पर यहां के मूल लेखक के रूप में ठीक से स्वीकारा ही नही गया। 66 में ही संभवतः वे

यहां की विरासत बन गये थे और आज हम बड़े स्वाभिमान के साथ उन्हें हिमाचल प्रदेश के हिन्दी उपन्यास साहित्य का जन्मदाता और प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाने मनस्वी के रूप में अङ्गीकार करते हैं और स्वंय को गौरवशाली मानते हैं। हालांकि यशपाल ने सामाजिक, राजनैतिक मनो वैज्ञानिक और ऐतिहासिक सभी तरह के उपन्यासों की रचना की है—पर मेरा निजि मत है कि शाश्वत सामाजिक सत्य जितने स्पष्ट रूप से उनके ऐतिहासिक उपन्यासों विशेषकर अमिता और दिव्या द्वारा मुखरित हुआ है, उतना बाकियों द्वारा नहीं। वभ्रु नामक पालतु कुत्ते को प्रताड़ना रूप से कह गए थे शब्द आज के साम्राज्यवादी ताकतों और उसकी विस्तारवादी नीतियों पर एक करारा चप्पत है : तू निरीह कपोतों को यों आतंकित करता है। अम्मा कहती है, किसी से छीनो मत, किसी को डराओं मत, किसी को मारो मत...तूं कपोतों से मत छीन...' ये शब्द उन शासकों के मुंह पर काली स्याही का हाथ निभाते प्रतीत होते हैं जो छीना झपटी पर विश्वास कर है, न खुद ठीक से जीते है न, दूसरों को ही जीना देना चाहते हैं। इस तरह यशपाल इतिहास की एक घटना के माध्यम से अतीत और वर्तवान दोनों को जोड़ते है ...और लूट-घसूट जैसी क्रियाओं को हर युग के लिए नकारते हैं। प्रेमचन्द मानवीय शोषण का हर मोड़ पर अपनी जीवन यात्रा के अंत तक विरोध करते हैं। यशपाल शोषण का खाली विरोध नहीं, करते, इसके लिए हथियार उठाने की प्रेरणा भी देते हैं। वे एक हाथ से संघर्ष के स्वरों का निर्माण करते हैं, और दूसरे से हथगोलों और बम्बों जैसे आग्नेय अस्त्रों का निर्माण करते हैं—कुव्यवस्था को खत्म करने के लिए/सुव्यवस्था की स्थापना के लिए। मार्क्स के बाद विचारों हथियारों का एक साथ प्रयोग करने वाले वे दूसरे व्यक्तित्व हैं। वे विद्रोह करते है, करवाते हैं। विद्रोही व्यक्तित्व रहने के कारण ही शायद लम्बे समय तक उन्हें हिमाचली उपन्यासकार के रुप अपनाने में परहेज किया गया हो।

प्रेमचन्द के उपन्यास का कार्य गर पाठक के मन में समाज के प्रति आक्रोश पैदा करना है तो यशपाल के उपन्यास का कार्य उसका जवाब देने के लिए पाठक को तैयार करना है। जिस तरह से रूढ़ियों और विसंगतियों का डटकर विरोध उन्होंने कर दिखाया है, वैसा तो अपने युग में प्रेमचन्द भी नहीं कर पाये थे। इसका कारण दोनों की अपरोच में और स्टाइल में अंतर है। प्रेमचन्द आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद की धारणा को पुष्ट करने वाले हैं, तो यशपाल केवल वैज्ञानिक यथार्थवाद की धारणा को प्रस्तोता हैं। प्रेमचन्द का कार्य दो विरोधी व्यवस्थाओं में व्याप्त वैषम्म को दर्शाना है, यशपाल का कार्य उससे एक कदम आगे का है अर्थात् उस वैषम्य की दीवारों को तोड़ गिराना है। इन्हें जन्म देने वाली कुव्यवस्था को आड़े हाथों लेना है, अर्थात् उससे दो दो हाथ करना है। सामाजिक राजनीतिक जीवन के यर्थाथ को पूरा साज्ज सामग्री के साथ प्रस्तुतीकरण—यह सब उनके उपन्यासों की निधि है।

दादा कामरेड में भी यशपाल मजदूरों को संगठित होने की प्रेरणा देते हैं और उनके संगठन द्वारा देश को आगे ले जाने की बात करते हैं, तो 'देशद्रोही' में मनुष्यता का अंकन केवल समाजवादी आइने से आंकते हैं। ऐसा करते हुए वे न तो गांधी का विरोध करने से हिचकचाते हैं, न ही कांग्रेस की तीव्र आलोचना करने से। वे तो 'शठे शाठ्यं समाचरेत' की उक्ति पर अपना विश्वास दुहराते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था चाहे वह कितना ही सफेद ओढ़ना ओढ़ ले, उनकी दृष्टि में एक भ्रष्ट व्यवस्था है, इससे निपटने के लिए वे अच्छे-बुरे दोनों तरह के तरीकों को अपनाना जरूरी समझते हैं, इससे निपटने के लिए शस्त्र उठाना तो उन्हें पसंद है, पर उससे समझौता करना कतई पसंद नहीं। वे गांधी के व्यक्ति के रूप में विरोधी नहीं, पर उनके शान्ति मार्ग के जरूर विरोधी हैं। उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से पूंजिपत्तियों को न्यासी के रूप में प्रश्रय देने की बात नहीं जंचती। यशपाल शांति पर विश्वास करते हैं, पर क्रांति द्वारा ही शांति लाने का आवाह्न देते प्रतीत होते हैं। उनका 'दिव्या' ऐतिहासिक उपन्यास भले ही हो, पर उसमें युग-युग से दलित और पीड़ित और अपने लिए भविष्य तलाशती नारी का ही जीवन्त चित्र उपस्थित हुआ है।

प्रेमचन्द की भांति यशपाल भी सामाजिक जीवन की बुराइयों को हमारे सामने रखते हैं, इसका समाधान उन्हें दिखता है : समाजवादी या साम्यवादी ढांचे के निर्माण करने में। इस वस्तु-सत्य की सार्थकता को हम भी नहीं नकार सकते। सामाजिक विषमता किस तरह मनुष्य के अन्तर्मन को तोड़ कर रख देती है, इसका उत्तर हमें उनके उपन्यास 'मनुष्य के रूप में' बखूबी देखने से मिल जाएगा। यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक विरूपताओं के प्रति विद्रोह का भाव है। इसके पीछे वे जिन कारणों को महत्त्वपूर्ण मानते हैं : वो हैं समाज में पूंजिपत्तियो द्वारा पैदा किए गए आर्थिक दबाव और सरकार द्वारा उन्हें किसी न किसी रूप में प्रश्रय देने की बात। उनके 'झूठा-सच्च' उपन्यास में देश के राजनीतिक वातावरण को ऐतिहासिक यर्थाथ के रूप में प्रगट किया गया है। इतिहास के अन्दर की खोज करते-करते हमें वर्तमान सत्य की खोज हो जाती है। यशपाल ऐसी खोज करने और इसके लिए उपाय ढूंढ़ने में पूर्णयता सफल रहे हैं। वे इतिहास से ही इस सत्य को ढूंढ़ निकालते हैं कि प्रेम द्वारा ही संसार को जीता जा सकता है, एक सूत्र में पिरोया जा सकता है—युद्ध द्वारा रक्त बहाने से नहीं। तभी तो अमिता का सम्राट अशोक सौ हजार निहत्थों का रक्त बहा बैठने के पश्चात् प्रतिज्ञा करने के लिए प्रतिश्रुत होता है : सम्राट अशोक प्रतिज्ञा करता है वह किसी से छीनेगा नहीं, किसी को डराएगा नहीं, किसी को मारेगा नहीं। अब अशोक हिंसा और युद्ध से विजय की कामना नहीं करेगा। वह कलिंग की विजयी महारानी की भान्ति निश्चल प्रेम से संसार के हृदयों को विजय करेगा,

यशपाल के पुरुष पात्रों में ही नहीं स्त्री पात्रों में भी विद्रोह के स्वरों की विद्यमानता है। यशपाल की नारी कारावास बने समाज से बाहर निकल एक तो इसका पुर्ननिर्माण करना चाहती है, और

इसके उद्धार के लिए स्वय आगे बढ़ना चाहती है । वह गृहस्थी की संकीर्ण परिधि से भी बाहर आना चाहती है और उन्मुक्त समाज की पुर्नरचना के लिए स्वयं को पुरुष के जाल से उन्मुक्त करना चाहती है । यशपाल उपन्यास में कथा के प्रस्तुतीकरण का लक्ष्य स्वप्नलोक में विचरण करना और उससे परमानन्द की प्राप्ति पाना नहीं मानते, प्रत्युत वे इसके द्वारा मानव जीवन का उतरोत्तर विकास दर्शाना मानते हैं। विकास जो निरन्तर होता है, जो निरन्तर होता रहेगा, जो न कभी रुका है, न रुकेगा। यशपाल ने प्रेमचन्द के द्वारा दर्शाये गए समाज के विकास सूत्र को जोड़ने का सशक्त प्रयास किया है। उन्होंने सचमुच उनके द्वारा सींची गई उपन्यास विधा को हिन्दी में और पुष्पित और पल्लिवत किया है। इस नाते वे प्रेमचन्द की विकास गति को दर्शाने वाले एकमात्र उतराधिकारी हैं ।

प्रेमचन्द द्वारा बीजारोपण की गई और यशपाल द्वारा सींची गई हिन्दी उपन्यास की इस प्रगतिशील और जनोन्मुखी परम्परा के हिमाचल के हिन्दी उपन्यासकारो द्वारा और आगे गूंथने के प्रयास सामने आए हैं, जिनमें से मैं कुछ एक का ही उल्लेख यहां करना चाहूंगा, हिन्दी उपन्यास की मूल धारा को समझने के अभिप्राय से (हां, विषय में अल्पज्ञान व सीमित ज्ञान व अधकचरा ज्ञान होना भी पूर्ण विस्तार दिला पाने में बाधक हों) —दूसरे शब्दों में मूल धारा से जुड़ने से मेरा अभिप्राय वैश्विक व राष्ट्रीय धारा से जुड़ने से है और इस रूप में हिमाचल के हिन्दी उपन्यासकारों द्वारा अपनी पहचान स्थापित कर लेने से है। वस्तुतः किसी उपन्यास के उपन्यास होने की सार्थक पहचान से अभिप्राय है—इसके भीतर छिपे सामूहिक मानव-जीवन के यर्थाथ को विविध क्रिया कलापों और चिंताओं के रुप में प्रगट करना। इस दृष्टि कोण के बाहर पड़ने वाली रचनाएं उपन्यास के परिवृत के बाहर ही रहेंगी अर्थात् हमें हर गली-मुहल्ले, हर नुकुड़-कुच्चे में उपन्यास के नाम पर बिकने वाले साहित्य को चाहे वो मिस कामिनी देवी का लिखा हुआ हो या प्यारे लाल आवारा काया फिर चाहे किसी मस्ताने, दीवाने या दूसरे छद्मवेशी लेखक का—उपन्यास की परिधि से बाहर निकालना होगा। किसी न किसी सीमा में हमें इस विधा को बांधना है, ऐसा करते हुए ही हिमाचल में हिन्दी उपन्यास के विकास को दिखा पाना संभव हो सकेगा। जब हम हिमाचल में हिन्दी उपन्यास की बात करते हैं तो दो प्रश्न अनायास ही हमारे सामने उपस्थित हो जाते हैं, वे हैं : हिन्दी उपन्यास का अर्थ हिमाचल में लिखे जाने वाले हिन्दी भाषा में रचे जाने वाले उपन्यासों से है या फिर हिमाचल के अंचल विशेष की परिधि में लिखे जाने वाले हिन्दी उपन्यासों से है। फिलहाल, हमें इन दोनों ही सीमाओं से ऊपर उठकर हिमाचल में हिन्दी उपन्यास के विकास और गति के प्रश्न को देखना है। इन सीमाओं के अन्तर्गत मैं एक बात और स्पष्ट कर दूं कि वो कि एक तो हिमाचल में हिन्दी उपन्यास चाहे वह हिन्दी भाषा में लिखे जाने वाला उपन्यास है या फिर यहां की भौगोलिक स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में लिखे जाने वाला हिन्दी उपन्यास है—दोनों

ही का सर्जना इतनी कम हुई है कि यदि इस पर भी इन्हें उपन्यास की किसी तर्क-सम्मत पूर्ण परिभाषा के अन्तर्गत लाने के उपरान्त इन्हें गिनना शुरु करें तो जोड़ शून्य के आसपास ही नज़र आएगा। इसलिए हमें हर सीमा का उल्लघंन करते हुए जो थोड़ा बहुत कार्य इस क्षेत्र में यशपाल और यशपाल के पश्चात् हुआ है, जो कुछ भी हुआ है, उसमें से ही कुछ प्रतिनिधि उपन्यासों का विवेचन करके इस विधा के विकास को जांचने-परखने का कार्य करना होगा। नाम गिनाने से मात्र यह कार्यपूर्ण न होगा। फिर भी संवेदना की अभिव्यक्ति, जमीन की गंध का आभास, मानव जीवन की सच्चाई को सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और भावनात्मक रूप में जांचने की क्षमता—ऐसे अनेकानेक मापदण्डों में से किसी एक या दो में पूरे उतरने की क्षमता तो उपन्यास में निहित होनी जरूरी ही है।

सामाजिक रूढ़ियों और हिमाचलीय परिवेश की सामाजिक समस्याओं को आधार रूप में प्रस्तुत करने वाला मनसा राम अरूण का उपन्यास 'देवाङ्गना' ऐसा ही एक उपन्यास है जिसमें संवेदना के धरातलों को छूने और जमीन से जुड़ने की बात को अपने में किसी न किसी रुप में समेटा गया है। स्वतंत्रता के उपरान्त लिखे गए इस उपन्यास में जातीय बोध उजागर अवश्य हुआ है लेकिन संयोग और वियोग के साथ। मैं स्वयं भी अपने लेखन में संयोग वृत्ति का शिकार रहा हूं, इसीलिए इस तत्व को इसमें आसानी से पकड़ सका। क्षेत्र विशेष की परम्पराओं और अन्ध विश्वासों को तोड़कर विवाह-सूत्र में बंधने की बात इस उपन्यास में आई है—यहां यह बात मैं स्पष्ट कर दूं कि हिमाचल के जिस क्षेत्र विशेष से लेखक विवाह पद्धति की चर्चा करता है, वहां दूर से तो ऐसा आभास होता है कि मानों विवाह संस्कार बहुत-ढ़ीले हों, पर निकट जाने पर मालूम होगा कि विवाह का विधान बाकि जगहों की अपेक्षा वहां ज्यादा दुरूह और पेचिढा है। मृत्यु वृत तक से नायक को गुजरना पड़ जाए, कोई बड़ी बात नहीं। महानगरीय संस्कृति अभी वहां नहीं पहुंची है। धर्म, जात-पात के संस्कार आज भी उनकी धरोहर हैं। यद्यपि नयी मूल्य-चेतना के दर्शन उपन्यास के कुछ स्थलों में दृष्टिगत होते हैं, लीक से हटकर जीवन की सार्थकता को दर्शाने की बात भी हुई है, लेकिन फिर भी उपन्यास जीवन की स्वाभाविकताओं और आधुनिक-बोध का ठीक से परिचय न करा पाने के कारण यह उपन्यास महज कहानी के लिए कहानी बन कर रह गया है।

मस्तराम कपूर ने अपने उपन्यासों में जीवन के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण को दर्शाने और विशेषरुप से मध्य वर्ग की समस्याओं को आगे लाने की कोशिश की है। वे कहीं-कहीं ग्रामीण जीवन के मूल्यों और महानगरीय जीवन के मूल्यों का तुलनात्मक विश्लेषण भी प्रस्तुत करते दिखते हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् ग्राम्य जीवन में आए परिवर्तनों को दर्शाने वाला उनका 'एक अटूट सिलसिला' उपन्यास हमारे सामने आता है जिसमें गांव की शहरों से लौटकर आई शिक्षित पीढ़ी द्वारा ग्राम्य परिवेश में नगरीय जीवन मूल्यों को लाने की बात कही गई है। उदाहरणार्थ जमींदारों से पैदावार का हक गरीब किसानों को दिलाने की बात है। कितनी ठीक बात है कि जो अपने खून पसीने को एक कर दिन-रात परिश्रम कर बंजर धरती से सोना उगलने में लगा है, वह और उसके बच्चे तो भूखे पेट सोये रहे और टांग पसार बीवी के सिरहाने के पास चौबीस पहर बैठे रहने वाला जमींदार एक दिन बोरियां भर कर वहां पहुंच कर उसके परिश्रम से उपार्जित अन्न धन्न को बटोर कर ले जाए। यह कहां का इन्साफ ठहरा? केवल अंश मात्र या कह लीजिए जूठन किसान की झोली में डाल देने से काम नहीं चलने का। ऐसा कब तक? आखिर नई शिक्षा की लहर, उसकी प्रत्याशित रश्मि ग्राम्यांचल तक तो पहुंचनी ही है। फिर हिमाचल में खेती-बाड़ी कर पा सकना है भी तो दुभर कार्य। श्री कपूर के इस उपन्यास में युवा पीढ़ी का आक्रोश विद्रोह के रूप में परिवर्तित होते हुए प्रगट हुआ है और इस रूप में संघर्ष द्वारा बदलाव की बात सामने आई है। ग्रामीण जीवन में नवीन संस्कारों के बीजावपन की बात उपन्यास में आई है, विशेषकर इसमें निवास करने वाले हरिजन वर्गों और दूसरे पिछड़े वर्गों में नवीन संस्कारों के उदय की बात। ज्ञान नई चेतना का प्रसार कर गांव के मानचित्र को किस रूप में तबदील कर सकता है, इसका बोध इस उपन्यास द्वारा हुआ है। उपन्यासकार सम्भवतः इस उपन्यास के अन्तर्गत सरकार के प्रति अपना रोष प्रकट करता है, शायद वह कहना चाहता है कि स्वतन्त्रता के उपरान्त गांवों में प्रगति और विकास को लेकर जो-जो परिवर्तन आने चाहिए थे -वह नहीं आ सके हैं। जो झलक शहरों और महानगरों में झलकी है, उससे कहीं अधिक देश के गांवों में झलकनी चाहिए थी, क्योंकि गांव इस देश की रीढ़ की हड्डी हैं। भारत गांवों में बसा है, यह गांवों का देश हैं। यदि यही कमजोर होंगे तो पूरा देश कैसे आगे बढ़ेगा? हिमाचल प्रदेश में श्रमिकों-मजदूरों की समस्याएं और विशेषकर युवा पीढ़ी की मानसिकता को मद्दनज़र रख कर लिखा गया गंगा राम राजी का उपन्यास 'मन-मथन' का प्रमुख प्रयोजन सामाजिक उपेक्षा को सविस्तार दर्शाना है। लेखक पेट की समस्या को सबसे ज्वलंत समस्या मानता है, उसकी दृष्टि में उसे सुलझाए बिना प्रगति और विकास की बात करना मात्र नारेबाजी है, या मन घडन्त कल्पना की उड़ान। लेखक का उपन्यास और सजीव हो उठता यदि वह सामाजिक उपेक्षा दर्शाने के साथ मजदूरों की जमात को इसके प्रति संघर्षरत्र करता, व्यवस्था से दो-दो हाथ करने की बात कहता।

हिमाचल में लिखे जाने वाले हिन्दी उपन्यासों में यह कमी आम रूप से सामने आई है कि कथा का एक पक्ष तो बखूबी से दर्शा दिया जाता है, लेकिन उसके मुकाबले में दूसरा पक्ष कमजोर पड़ जाता है। कहीं सपाट बयानी दोष बनकर उभरती है, कहीं कल्पना की अनिश्यता तो कहीं लेखक का स्वंय उपदेशक, उदघोषक व प्रतिष्ठापक बनने का कुप्रयास करना। ऐसा होने से

उपन्यास की कथा वस्तु बिगड़ती जाती है। हिमाचल के कितने हो उपन्यासकारों के औपन्यासिक कृतियों का भविष्य ऐसे ही दोषों की उपस्थिति रहने के कारण अधर में लटक गया है। अधिकांश उपन्यासों में उठाई गई समस्याओं के समाधान को युक्तिसंगत ढंग से प्रस्तुत करने के प्रयास ठीक से नहीं हो पाए हैं, जिसके अभाव में ये बेचारे उपन्यास सामाजिक चेतना के अंग प्रत्यंग बनने के स्थान पर मात्र दिल-बहलावे की सामग्री बन कर रह गए हैं। उपन्यास में जहां अभिव्यक्ति का प्रश्न जरूरी है, वहां सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों को प्रकट करना भी उतना ही जरूरी है। उसके विरूद्ध विद्रोह के स्वर मुखरित करना भी उतना ही जरूरी है।

सुदर्शन वशिष्ठ की कृति 'आतंक' महाभारतीय कथा: परिवेश के अन्तर्गत लिखी गई अतीतकाल को सम्बोधित करती कृति होने पर आज के वर्तमान युग के विश्व समाज के नवीन मूल्यों को रेखांकित करती है। उपन्यासकार वशिष्ठ अपने उपन्यास की कथा के माध्यम से 'युद्ध' जैसी घिनौनी सोच का विरोध करते हैं—जो आज भी उतना ही प्रासगिक है, जितना कल था। युद्ध समस्याओं का समाधान प्रस्तुत नहीं करता। युद्ध का विकल्प शांति है। हां, शांति-स्थापना के लिए आतताइयों से टक्कर लेनी जरूरी है। दो राज्य अकादमियों द्वारा पुरस्कृत यह कृति सामाजिक दाय को समझने में सक्षम हुई है।

इसी विश्वविद्यालय के मेधावी और प्रखर हिन्दी साहित्य कर्मी जिन्होंने हिमाचल में उपन्यास विधा में सबसे सार्थक और महत्वपूर्ण कार्य किया है, वो डॉ. सुशील कुमार फुल्ल हैं। वे उपन्यासकार ही नहीं, कहानीकार ही नहीं, समीक्षक और इतिहासवेता भी हैं। इसलिए वे अपने आप में एक संस्था हैं। हिमाचल में स्वतन्त्रोत्तर लिखे गए हिन्दी साहित्य में, नये साहित्यकर्मियों को आगे लाने और उन्हें यथासंभव प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ने का बीड़ा जो उन्होंने उठाया है, वह स्तुत्य है। उन्होंने नये-उभरने वालों को पहली ही स्टेज में अपने नुकीले:कटीले व्यंग्य बाणों से बेंधने के बजाए और अच्छा लिखने का ढाढस देकर, अवसर जुटा कर उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। इस रूप में 'फुल्ल' एक उपन्यास लेखक ही नहीं, नये-नये उपन्यासकारों का निर्माण करने वाले एक मनस्वी व्यक्तित्व के रूप में भी उभरे हैं। 'ललकार', 'वापसी', 'टकराती लहरें', और 'पर्वतों के ऊपर" गर उनके बालकों और किशोरों के लिए रचे गए उपन्यास हैं, तो 'मिट्टी की गंध', ,फूलों की छाया', 'कहीं कुछ और' और 'नागफांस' उनके अन्य सामाजिक उपन्यास हैं। 'पर्वतों के ऊपर' उनके बाल-उपन्यास में गद्दी जीवन की विवशता की एक झलक देखने को मिलती है, तो इसी में सरकारी विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार का रोना भी पर्याप्त मात्रा में है। वस्तुतः स्वतंत्रता के पश्चात् यही सब तो हमारी राष्ट्रीय निधि बनकर रह गई है। 'नागफांस' में लेखक द्वारा यह दिखाने की कोशिश हुई है कि समाज में जो परिवारिक बंधनों के टूटने की श्रृंखला चली है, उसके पीछे मूल कारण कौन से हैं? वैधव्य जीवन समाज के माथे पर पोता गया एक कलंक है। मध्यवर्गीय परिवारिक जीवन की त्रासदी को उभारने में डॉ. फूल्ल पूर्ण रुप में सफल रहे है।

उपन्यास विधा में उन्हें इसी वर्ष अकादमी का प्रथम पुरस्कार भी मिला है। इसी प्रकार की मानवीय जीवन की त्रासदी का एक अन्य चित्र भूतपूर्व मुख्य मंत्री और प्रदेश की प्रथम पंक्ति के उपन्यासकार शांताकुमार ने खींचने की कोशिश की है। 'मन के मीत' उपन्यास में उन्होंने दण्डव्यवस्था की विसंगतियों पर अपनी कलम चलाई है। उनका कहना है : पुलिस का कार्य आतंक रोकना है, फैलाना नहीं। कैदी जीवन के यथार्थ को उसकी विसंगतियों सहित दर्शाने में यह उपन्यास सफल रहा है। उनके एक दूसरे उपन्यास 'कैदी' में भी इसी सत्य की झलक देखने को मिलती है। कैदी भी आखिर एक मानव है, उसे सुधरने के अवसर मिलने चाहिए। इस उपन्यास में जेल में होने वाले अमानुषिक व्यवहार के विरुद्ध आवाज बुलन्द की गई है। साथ ही न्याय के रखवालों द्वारा भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी जैसी बुराइयों को बढ़ावा देने वाली बात भी सामने आई है। इनके' लाजो' उपन्यास में विधवा नारी के पुर्नविवाह की समस्या को उठाया गया है। निराश्रित और उपेक्षित: प्रायः वैधव्य जीवन से मुक्ति पाने का एक ही रास्ता है—पुर्नविवाह। उत्तम परमार अपने उपन्यासों में जीवन यथार्थ से कटकर आदर्शवादी मूल्यों को आगे लाती हैं। वह शाश्वत मूल्यों के रक्षण और संमर्धन में विश्वास रखती हैं। वह कर्मों के अच्छे और बुरे फल की प्राप्ति की बात अपने उपन्यासों में उठाती हैं। सुखदा' उपन्यास में उन्होंने नारी द्वंद्व को विश्लेषित करने का प्रयत्न विशेषकर अनमेल किया है, विवाह की समस्या को और उससे उत्पन होने वाली मानसिक व्यथा को। 'अपेक्षा' उपन्यास में उन्होंने जातीय कटुता को तोड़ने की बात स्वर्ण और अस्वर्ण में प्रेम सम्बन्ध को दर्शाने के साथ-साथ कही है। 'संस्कार' उपन्यास में लेखिका नारी को जैसे यह सीख देती जान पड़ती है कि वहमात्र पुरुष के हाथ की कठपुतली नहीं, प्रत्युत वह सामाजिक विकास और प्रगति में बराबर की हिस्सेदार है। ... उल्ट पुरुष से एक कदम आगे ही है।

संसारचन्द्र प्रभाकर द्वारा लिखित उपन्यास 'निरपराध अपराधी' में गांव में होने वाले (चलने वाले) महाजनी शोषण को बात सामने आई है। ऋण की आड़ में लेने वाले जुल्म की रिर्पोट इस उपन्यास में देखने को मिलती है। निरपराध व्यक्ति किस तरह अपराधी बन जाता है और अपराधी इस घिनौनी प्रजातांत्रिक व्यवस्था में सुरक्षित रहता है। दोनों ही बातों की झलक इस उपन्यास में देखने को मिल जाएगी।

महाराज कृष्ण काव एक ऐसे व्यक्तित्व हैं जो एक अच्छे प्रशासक भी हैं और एक अच्छे लेखक उपन्यासकार भी। उन्हें हिमाचल के लेखकों का मसीहा माना जाता है। श्री काव अपनी कविता की भान्ति उपन्यास में भी कई महत्वपूर्ण सारगर्भित प्रश्नों को उठाते हैं, उनका उत्तर समाज से मांगते हैं, उनका उत्तर समाज को देते हैं। 'आसमान नहीं गिरते' उपन्यास में उन्होंने सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण मुद्दों को हमारे सामने रेखांकित किया है। वे इसमें जहां भ्रष्ट राजनीतिक नेताओं और प्रशासनिक अधिकारियों को बेनकाब करने की कोशिश करते हैं, वहां धर्म के ठेकेदारों को भी आड़े हाथों लेते हैं। वे राजनीति और प्रशासन दोनों में ऐसे जीवन मूल्यों की

वकालत करते दिखते हैं, जो ईमानदारी और सच्चरित्रता जैसे सद्गुणों पर आश्रित हों। वे समाज में प्रदूषण पैदा करने के लिए समाज के भ्रष्ट नेताओं का उतना ही योगदान मानते हैं जितना कि सामंती प्रवृत्ति रखने वाले उद्योगपतियों का और धर्म के ठकेदारों द्वारा विकृत किए गए धर्म के स्वरुप का। उनकी दृष्टि में धार्मिक संकीर्णता समाज में ज़हर फैलाती है। सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवन-व्यवस्था की विसंगतियों और कुरीतियों को दर्शाने में यह उपन्यास सफल रहा है।

मुझ से इस आलेख में बहुत से हिमाचली हिन्दी उपन्यासकारों के नाम और उनकी प्रतिनिधि रचनाओं के नाम छूट गए हैं। पर मैंनें जैसे पूर्व निवेदन किया है कि उपन्यास रचना का प्रयोजन अपने कथावृत्त में किसी संवेदनशील विचार को जोड़ना रहना चाहिए। प्रेमकथाओं को आधार मान कर सैक्सीय प्रवृत्तियों को भड़काने वाले उपन्यासों की संख्या गिनाना वहां जरुरी नहीं होगा। मेरा प्रयास इस पत्र में कुछ एक उपन्यासों को आधार बनाते हुए हिमाचल में लिखे गए और लिखे जा रहे हिन्दी उपन्यास धारा को कुछ-कुछ रेखांकित करता है। इसीलिए मैंने यहां कुछ एक ऐसे ही उपन्यासों के नाम गिनाये हैं जिन्होंने सामाजिक विकास क्रम को अभिव्यक्त करने की कुछ न कुछ पहल की है। इनमें से अधिकांश उपन्यास मैंनें पढ़े हैं, खरीदे भी हैं, कुछ के बारे में सुना है, और कुछ के बारे केवल छपी प्रतिक्रियाओं से नकल की है। बिना नकल के भी काम नहीं चलता मैं स्वयं एक अदना सा लेखक हूं, अच्छा-बुरा सब लिखता हूं, मुझे समीक्षा करनी नहीं आती, न ही निंदा विज्ञान का मैंनें प्रशिक्षण लिया है। कृषि विश्वविद्यालय के दर्शन करने, डॉ. फुल्ल जैसे स्नेही मित्रों से मिलने के बहाने पिछली रात देर तक बैठकर चार घण्टे लगाकर यह पर्चा लिखा है।

आपसे विदा लेने से पूर्व अंत में इस बात पर जरुर जोर डालना चाहूंगा कि लेखन में विशेषकर उपन्यास लेखन में एक चीज नहीं छूटनी चाहिए। वह है मानव और उसके परिवेश की विसंगतियों का चित्रण। आखिर लेखक का एक ही ध्येय तो है: इस समाज को और बेहतर समाज बनाने के लिए लिखना। हम सब इसके लिए कृत संकल्प हैं। हिमाचल के हिन्दी उपन्यासकार आजकल की अपेक्षा ज्यादा सचेत हैं और यही सचेतता इस पहाड़ी प्रदेश में हिन्दी उपन्यास सर्जना के उज्जवल भविष्य को संकेतित करती है।

राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला
रिवालसर, जिला मण्डी
हि. प्र. 185 023

'कांगड़ा घाटी से मणिमहेश यात्रा'

□ रतनलाल चौधरी
एम. ए.

आज के आधुनिक युग में सरकार द्वारा आने-जाने के साधन सुगम बना दिये हैं। परन्तु आज से सैंकड़ों वर्ष पहले यह तीर्थ यात्राएं कितनी दुर्गम होती थीं। किस प्रकार सैंकड़ों ही व्यक्ति इस यात्रा में ठण्ड से अकड़ कर मर जाते थे। तो भी इन यात्राओं पर जाने के लिए लोग हतोत्साहित नहीं होते थे। मणिमहेश चम्बा जिला के कैलाश पर्वत पर स्थित है। कहते हैं कि यहां पर ही शिवजी रहते हैं। लोगों में धार्मिक आस्था इतनी थी कि उन्हें यह पता होते हुए भी कि लौटकर घर आना है या नहीं तो भी वह लम्बी यात्राएं किया करते थे। यूं तो आजकल लोग चम्बा होकर बसों द्वारा मणिमहेश की यात्रा पर जाते हैं। परन्तु जब आने-जाने के साधन बहुत कम थे तो लोग पालमपुर, बन्दला, लणाणी, खाहला, ठात्री होते हुए हिमालय पर्वत पार करके भरमौर पहुंचते थे और अब भी अधिकांश तीर्थ यात्री इसी मार्ग से मणिमहेश जाते हैं। जिन लोगों का यह विश्वास है कि तीर्थ यात्रा पैदल चल कर ही शुभ मानी जाती है। हां लौटती बार यह लोग इस मार्ग से नहीं लौटते अपितु बसों द्वारा चम्बा होकर कांगड़ा या पालमपुर पहुंचते हैं।

हिमालय पर्वत पर लोग कभी-कभी किस प्रकार मृत्यु को प्राप्त होते हैं का वर्णन ही मैं पाठकों को देने जा रहा हूं। पालमपुर से प्रातः चलने से यह यात्री लणाणी, चचरूड़, खाहला, मक्खानकुंड होते हुए रात्रि को ठात्री नामक स्थान पर पहुंचते हैं। यह यात्री अकेले दुकेले नहीं नहीं होते अपितु समूहों में होते हैं। यह यात्री ठात्री में रात को ठहरते है यहां ठहरने के लिए किसी जमाने में बड़े-बड़े पत्थरों के नीचे गुफाएं खोदी हुई हैं। बरसात के दिनों में लोग अपने पशुओं को हिमालय के इन स्थानों में चरने के लिए ले आते हैं। भरमौर से जब गद्दी लोग अपनी भेड़ बकरियां लेकर हिमालय से उतरते तथा चढ़ते हैं तो इन गुफाओं में कई-कई दिन रहते हैं। इन्हें 'कुण्ड' कहा जाता है। लणाणी से ऊपर कोई आबादी नहीं है। केवल बाण तथा बरास के वृक्ष हैं तथा हिमालय पर्वत पर वाली जड़ी-बूटियां हैं या ढलानदार चारागाहें हैं। सांय-सांय करती ठण्डी हवाये हैं तथा कल-कल करते झरने हैं। रंग-बिरंगे पक्षी हैं तथा चौकड़िया भरते

बन्द पशु हैं जो मानव को देखते डर कर भाग जाते हैं। रास्ता कठिन हैं तथा दुर्गम भी। पांव फिसल जाने पर हड्डियां सलामत नहीं रह सकती। शरद् ऋतु में हिमालय के चरणों तक बर्फ से यह स्थान ढ़क जाता है। तब हिमालय की ओर देखने से आँखे चुंधिया जाती हैं ग्रीष्म ऋतु में यह बर्फ पिघल कर नदियों नालों में बह जाता है। परन्तु ठात्री नामक स्थान से ऊपर 'धणों' नामक स्थान से लेकर 'जोत' धौलाधार तक बर्फ बारह महीने रहता है। धणो नामक स्थान से ऊपर वनस्पतियों का तिनका भी नहीं है। केवल काले रंग की चट्टानें हैं या फिर बर्फ ही बर्फ है। वनस्पतियों के अभाव में तथा सागर सतह से हजारों मीटर उपर होने से यहां पर ऑक्सीजन का दबाव बहुत कम है। दूसरे ठात्री से चलकर अगली रात जोत पर ही पड़ जाती है। लड़कियों का बन्दोवस्त न होने से जोत पर सर्दी सदा शून्य बिन्दु आस-पास होती है। दूसरी ओर आक्सीजन का दबाव बहुत कम है तीसरे यात्रियों के पास पर्याप्त कपड़े नहीं होते हैं। फलस्वरूप कई यात्री वहां सर्दी से अकड़ कर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। केवल दो दिन का पड़ाव ही जान लेता हैं। परन्तु जो लोग पर्याप्त साधन लेकर यात्रा करते हैं उन्हें कोई खतरा नहीं होता। इसलिये धणों नामक स्थान से ही लड़कियों के गट्ठे उठाने होते हैं। ऑक्सीजन के कम दबाव के कारण खाली चलना भी कठिन होता है तो लकड़ियों की कौन पूछे। दूसरे जोत पर सदा बर्फ ही गिरती हैं चाहे ज्येष्ठ महीने की चिलचिलाती गर्मी ही हो। ठण्डी हवा सांय-सांय करती कलेजा चीर जाती है। इसे 'वियासण' चलना कहते हैं तथा इसी से लोग मरते भी है

हिमालय पर्वत पार करके दूसरी ओर उतराई है तथा होली नामक स्थान से चम्बा जिला की आबादी आरम्भ हो जाती है। यहां हर गद्दी लोग यात्रियों की पर्याप्त सहायता करते करते हैं। दूसरी ओर चम्बा से आने वाले यात्री भी मरमौर में इक्कठे हो जाते हैं। यहां पर यात्रियों का समूह ठाठे मारता हैं। जय-जय कारों से पर्वत गूंजते हैं। यहां पर ही 'चेले' पुजारी खेलते हैं तथा जिस व्यक्ति को आगे जाने की अनुमति नहीं होती उस का नाम तथा उसके गांव का नाम लेकर बता दिया जाता है कि शिवजी महाराज की आज्ञा है कि उक्त व्यक्ति वापिस अपने घर लौट जाए। यदि कोई मनमानी करे तो वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

यहां पर ही यह निर्णय भी किया जाता है कि इस यात्रा का 'अगवा' 'अग्रमी कौन होगा जो सब से आगे चलेगा। यह निर्णय भी शिवजी महाराज के 'चेले' द्वारा किया जाता है। यह कोई साधु या धार्मिक व्यक्ति ही होता है। यात्रियों का जन-समूह इस के पीछे-पीछे चलता है तथा कैलाश यात्रा आरम्भ होती है। कैलाश पर्वत के नीचे एक तालाब है इसे 'डल' या 'सर' कहा जाता है। यह तालाब इतना बड़ा है कि पतीले में चावल उबालने रख जाओ और तालाब की एक परिक्रमा कर के वापिस आओ तो चावल पके हुए मिलेंगे। इस का पानी इतना ठण्डा होता

है कि कई यात्री तो नहाने का सहास किये बिना हाथ मुंह धोकर वापिस लौट आते हैं। इस इस तालाब का करिश्मा यह है कि यात्रियों ने तालाब के आस-पास अपने डेरे-तम्बू लगाए हैं। जब नहाने का समय आरम्भ होता है तो इस तालाब के पानी में आसाधारण वृद्धि होने लगती है और आस-पास का सारा शुष्क क्षेत्र पानी से जल मग्न हो जाता है यह समय ही नहाने का है जब नहाने का समय व्यतीत हो जाता है तो पानी अपने स्थान तक उतर जाता है। यह ही यहां चमत्कार है। यह तालाब इस दुर्गम पर्वत पर किसने बनाया तथा अकस्मात जल की वृद्धि कैसे हो जाती है और कैसे यह शान्त हो जाता है यह तो शिवजी महाराज ही जान सकते हैं हां श्रद्धालु कृत कृत्य अवश्य हो पाते हैं।

इस तालाब के सामने ही कैलाश पर्वत है। यह बारह महीने बादलों से ढ़का रहता है। कभी-कभी शिवजी महाराज जब अत्यन्त प्रसन्न हों तो कुछ समय तक दर्शन देते हैं। कहते हैं कि यहां पर शिवजी का धूणा है पास ही त्रिशूल गढ़ा हुआ है। त्रिशूल पर झोली टंगी हुई है। इस के नीचे शिवजी महाराज तक पहुंचने के लिए पौड़ियां हैं। इन पौड़ियों पर एक सांप चढ़ता हुआ दिखाई देता है तथा गद्दी की वेश-भूषा में एक व्यक्ति के ऊपर चढ़ने की क्रिया में पाषाण का मानव है। कहते हैं कि इस कैलाश पर्वत पर कोई भी चढ़ने में सफल नहीं हुआ। एक बार एक गद्दी ने दुस्साहस किया था जो पाषाण की प्रतिमा में परिवर्तित हो गया। वह गद्दी अपने साथ एक सौ बकरे ले गया था। वह प्रत्येक पौड़ी चढ़ते ही एक बकरा काट देता था। क्योंकि शिवजी महाराज के स्थान पर पहुंचने तक केवल एक सौ पौड़ियां ही बताई जाती हैं। कहते हैं जब वह एक सौ बकरे काट चुका तो उपर देखा कि सौ पौडी और चढ़नी होगी तभी वह पाषाण की मूर्ति में परिवर्तित हो गया। यह एक सुनी सुनाई बात है। जिस प्रकार मैंने सुनी है उसी प्रकार पाठकों की जानकारी के लिये प्रषित कर रहा हूं। तो भी इतना तो अवश्य है कि लोग अपनी जान को जोखिम में डाल कर इस स्थान पर अधिक से अधिक मात्रामें जाते हैं तथा अपने जन्म को सार्थक बनाते हैं। कुछ लोगों का तो यहां तक विश्वास है कि जीव मर कर इस स्थान पर आता है तथा यहां पर ही उसके अच्छे या बुरे कर्मों का निर्णय होता है। वैसे भी शिव जी को मोक्ष प्रदान करने वाला माना जाता है। जो व्यक्ति इस यात्रा में मर जाते थे उन्हें यह समझा जाता था कि इसे मोक्ष प्राप्त हो गया। परन्तु आज ऐसा बहुत कम होता है। क्योंकि सरकार अब इस यात्रा में अधिक से अधिक सुविधाएं जुटा रही है तथा अनेक प्रकार के प्रबन्ध सरकारी तौर पर किये जा चुके हैं। अब तो अधिकांश लोग चम्बा होकर बसों द्वारा ही इस यात्रा को करते हैं। इस यात्रा का महत्व श्री अमर नाथ यात्रा के समान ही बढ़ता जा रहा है तथा हिमाचल प्रदेश सरकार अधिक से अधिक रूचि ले रही है। आशा है कि भविष्य में यह यात्रा अधिक से अधिक सुगम हो जाए गी।

हि. प्र. राजकीय मुद्रणालय,
घोड़ा चौकी, शिमला-171 005

एक मूल्यांकन

पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम द्वारा रचित साहित्य

☐ रत्न चन्द शर्मा

पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम विश्व के उन अंगुली गण्य लोगों में से अन्यतम हैं, जिन्होंने अपना समस्त जीवन समाज के जागरण, उत्थान तथा भारत देश की स्वतंत्रता के हित समर्पित कर दिया और स्वयं आजीवन विपन्नताओं एवं अभावों से भरे संघर्षमय जीवन से जूझते रहे। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनमें दैवी प्रदत्त अनेक विध ऐसे गुण विद्यमान थे, जिनके बल पर वे सर्वविध सांसारिक सुखों का ऐश्वर्यपूर्ण ढंग से उपयोग कर सकते थे। परन्तु उन्होंने अपनी प्रतिभा को, अपने सर्वस्व को साहित्य के माध्यम से परतंत्रता की श्रृंखलाओं में बद्ध जन्मभूमि को मुक्त कराने के लिए अर्पित कर दिया। बदले में समाज व देश से कुछ न चाहा न ही लिया। गीतोक्त निःस्काम कर्म योगी के जो लक्षण है वे सब उनके जीवन व साहित्य में चरितार्थ हैं।

बाबा जी का जन्म 11 जुलाई, 1882 ई० को डाडा सिबा गांव में पण्डित लखनु राम के घर में हुआ। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गांव में ही हुई। विद्यालय के प्रांगण में ही इनकी कवित्व प्रतिभा तुकबन्दियों के रुप में प्रस्फुटित होने लगी थी। गायन में इनका सहज अनुराग था। आयुर्वेद में भी रुचि थी। परन्तु इन सबमें इनकी कवित्व प्रतिभा सर्वोपरि थी।

बाबा गांधी में कवित्व और कण्ठमाधुर्य का अद्वितीय मेल था। स्वरचित कवितायें में व गीत लिख कर वे उन्हें विविध तर्जों पर स्वयं गाया करते थे। इनका तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रख कर बनाया गया प्रसिद्ध गीत 'रस्सी दा बणी गया सप्प लोको, मेरे गलाया सच्च लोको।' आज भी जन मन में अपनी अमिट छाप लिए हुए है। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत के भी वे ज्ञाता थे। 'हरिवल्लभ संगीत समारोह में इनकी उपस्थिति इस बात का प्रमाण है। इनकी कण्ठ माधुरी में एक जादू था, जो श्रोताओं को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लिया करता था। इसी लिए सरोजनीनायडू ने बाबाजी को 'पहाड़ी बुल-बुल' की उपाधि से विभूषित किया था।

सन् 1911 ई० को बाबा जी तत्कालीन परिस्थियों की सही जानकारी प्राप्त करने के लिए दिल्ली पहुंचे। वहां उनके जीवन पर महात्मा गांधी के सत्याग्रह अन्दोलन का अमिट प्रभाव पड़ा। इसके साथ ही राम बिहारी बोस द्वारा लार्डहर्डिंग पर बंम फैंकने की घटना को इन्होंने अपनी आंखों से देखा। सरकार की नृशंसता के प्रति इनके मन में बहुत क्षोभ हुआ। क्षुब्ध मन से वे लाहौर वापिस आ गए। सन् 1920 को पहली बार डाडा सिबा में ही इनको बन्दी बना लिया गया। जेल यात्रा के साथ ही इनके कवित्व जीवन का भी विधिवत् शुभारंभ हो गया। फलस्वरूप 1921

में इन्होंने पहली कविता 'निक्के निक्के माणुआं जो दुःख बड़ा भारी' लिखी। इनके बाद ये जेलें काटते रहे और कवितायें भी लिखते रहे। जब इन्हें जेल जीवन से मुक्ति मिलती तो ग्रामीण समान्य जनता को स्वतंत्रता का महत्व बताते तथा उन्हें स्वतन्त्रता के बलिदान के लिए तैयार करते। 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जलियां वाला हत्या काण्ड ने इन्हें अंग्रेजों का विद्रोही बना दिया। अब ये महात्मा गांधी के अनुरागियों में सम्मिलित हो गए। गांधी जी के प्रत्येक कदम के साथ कदम मिलाते हुए आगे बढ़ने लगे। इनकी बाणी में ओज था 1937 को होशियारपुर में जब कांग्रेस का सम्मेलन हो रहा था, तो नेहरु जी ने इन्हें 'पहाड़ी गांधी' कहा था, तबसे ये इसी उपनाम से जन प्रिय हुए। उनका निश्चय अटल था, एक बार जो प्रण कर लेते उसे प्राणपन से निभाते। सरदार भक्त सिंह, राज गुरु व सुखदेव को फांसी की सजा सुनाई गई। ये समाचार जब इन्होंने पढ़ा तो भीस्म प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक देश स्वतंत्र नहीं होगा मैं काले बस्त्र ही धारण करुंगा। इस वचन का अनेक कठिनाई आने पर भी आजीवन पालन किया। इन्होंने कुल मिलाकर नौ साल जेल-जीवन में बिताये। जेलों में अनेक कष्ट सहन किए। जिन असह्यदुःखों को सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

पहाड़ी बाबा ने जीवन के कटुअनुभवों को महसूसा था। अतएव उनके साहित्य में कल्पना की उड़ान कम मिलती है। उनका साहित्य वास्तविक अनुभूति पर की गई यथार्थ सृष्टि है। जेल-जीवन के अनुभव का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने वाली उनकी कविता 'मेरा जीणा बीतया मेरे जीणे दिया तैयारिया च' है।

साहित्य : पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम ने अपने साहित्यिक जीवन में गद्य-पद्यमयी आठ कहानियां तथा पांच सौ के लगभग कविताएं लिखी हैं। कुणाले दी कहानी, नाना दी कहानी, बाबा बालकनाथ कने फरियाद, चतरु कने रेशो, दुःखे दे मने कोई रहम नी, मेरा वीर चेतक, घुम्मदी नजर, अंग्रेज सरकारा दा ढिगा पर ध्याड़ा, निक्के निक्के माणुआं जो दुःख बड़ा भारी, 730 दिनांरी कैद, जाहलू में तुहाते विदाई लैंणी इत्यादि। उनका साहित्य अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। कुछेक कवितायें यत्र तत्र पत्र-पत्रिकाओ में पढ़ने को मिली हैं। उसके आधार पर ही कुछ लिखा जा सकता है।

इनकी रचनाओं में स्वतंत्रता के प्रति व्यग्रता पाई जाती है, राष्ट्र प्रेम की भावना साकार होकर गाती है। अच्छूतोद्धार की समस्या जो एक कोढ़ की तरह समाज को गलित करती है, बाबाजी ने इस पर भी कलम उठाई है। उनकी कविताओं में जहां प्रेम और श्रृंगार का प्रतिवादन है वहां भक्ति प्रवणता भी दिखाई देती है। सौन्दर्य और प्रकृति भी उनसे अछूती नहीं रही है। कुछ कविताएं इन दोनों से ओत प्रोत हैं। अध्यात्म विषय पर तो वे साधिकार लिखते थे। इसके अतिरिक्त पर्वतीय जीवन की सजीव झांकी उनकी रचनाओं में पाई जाती है। कुनाले दी कहानी कांशी दी जवानी' इन की गद्य-पद्यमयी रचना है। इसी प्रकार बाबा बालक नाथ कने फरियाद' उनकी भक्ति परक रचना है जो इन की देशभक्ति के साथ आध्यात्मिक दृष्टि की प्रतीक है।

पहाड़ी गांधी का कवि जीवन जेलों से जुड़ा रहा है। जेल की दुर्दशा और गहरी अनुभूति मयी व्यथा इन निम्न पंक्तियों में फूटकर बाहर निकलती है। जेल का बन्दी, बद्धविहग की तरह छटपटाता हुआ गाता है :—

"मेरी कैद दु:खां वाली मुकदी बी नी,/कब बाहर जाऊं देश सेवा करूं मैं,
छोटा कमरा खड्डो वाला,/बाहरों मारन ताला ॥"

अन्यत्र अटक जेल का वर्णन करते हुए कवि ने जेलों की दुर्दशा, कैदियों के साथ दुर्व्यवहार, असह्य यातनायें, खान-पान की बिगड़ी हुई दशा का निम्नलिखित पंक्तियों में वर्णन किया है :—

"अटक जेल का हाल सुनाते हैं/जिससे हम अभी-अभी आते हैं ...
भाजी में चमडा डाला जी,/एक दाल में चूहा निकला जी
जब सर्दी के दिन आते हैं/हम ठण्डे पानी नहाते हैं ...
यह हम पर जुल्म ढाते हैं,/कांशी यह हाल सुनाते हैं।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होने के साथ कान्ता सदृश, सरस-भाषा में उपदेश भी प्रदान करता है। बाबा गांधी द्वारा जन साधारण के समझने योग्य भाषा —'पहाड़ी'— में लिखी कविताएं ग्राम्यजन पर सीधा प्रभाव जमाने की क्षमता रखती है। वे कांगड़ा के आशला बूढ़ों को स्वतन्त्रता संग्राम में निर्भीक बन कर सम्मिलित होने का आह्वान करते है :...

हुण मन्नो गलाया कांशीदा, डर रखो न मने च फांसी दा।
असां लौणा सुराजलोको, फिरी बसी कांगड़े देस जाणा ॥

भारत सदृश विशाल देश में सांप्रदायिक सद्भाव और एकता की सदैव ही आवश्यकता रही है। स्वतंत्रता के पूर्व इसका महत्त्व स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए था और वर्तमान समय में उस स्वतंत्रता को चिर स्थायी बनाये रखने के लिए है। स्वतंत्रता को पाने में यह सांप्रदायिकता बाधक थी अतएव कांशी निम्न पंक्तियों में सांप्रदायिक एकता पर बल दे रहे है :—

"हिन्दू, मुस्लिम भाइयो,/सिक्ख, जैन, ईसाइयो,/हुक्म गांधी सुनाइयों,
मिले सुराज अडोल,/हमने धर्म विचारा,/कहन्दा कांशी प्यारा"

एक कविता में उन्होंने एक गांव का चमत्कार पूर्व वर्णन किया है। इस कविता की अन्तिम पंक्तियां अवधेय हैं। 'एक गांव में छोटे छोटे घर हैं, वे कच्चे हैं, उन पर स्लेट भी नहीं हैं, अपितु घास से छाये गए हैं। राज मार्ग नहीं, पगडंडियां हैं, वे भी उबड़-खाबड़, टूटी फूटी सी। उस गांव को चारों ओर से बन ने घेरा है मानो यही वन इस गांव की लाज का रक्षक बना है'

"उन्हां टपरुआं दी लाज बचाणे जो,/चारों पासे रुखां दा बण था।"

बाबा का कवि प्रकृति से तादात्म्य स्थापित किए हुए है। प्रकृति के हर परिवर्तन पर मुग्ध होकर तद् रुप हो जाना चाहता है :- 'सांझ पड़ रही है, सूर्य अस्ता चल में डूब रहा है, पश्चिम में लालिमा छाई है, उमड़ते घुमड़ने बादल आपस में आलिंगन कर रहे हैं। क्योकि अंधेरा होने को है।

सञ्ञा दे डुबदे सूरजे अम्बरे पर लाली छाई,/लाल बदलां दियां टोलियां,

जकियां पाई के कठियां होइयां,/तां न्हेरा होणे जो आया ।

श्रृंगार वर्णन में भी कवि पीछे नहीं हैं। इन्होंने एक पर्वतीय तरूणी को अनेक उपमानों से सजाया है। कवि उसके रूप और सौन्दर्य पर मुग्ध है। नायिका की आंखों की उपमा के लिए एक पहाड़ी शब्द 'बाकड़ो' का प्रयोग किया है। पलकें इन्द्र धनुष सरीखी टेढ़ी व सुन्दर हैं। नाक के लिए 'नक्‍ड़ू' शब्द का प्रयोग भी अपना ही अर्थ लिए हुए है। उसकी आंखे मदमाती हैं। अन्त में कवि कहता है कि हे नायक, यह रुप भरी नव यौवना तेरे लिए हैं :- 'ए रुप/ए जवानी,

अम्बा दी बाकड़ी बरगी अखियां,/अम्बर धनुष दे ही पलकां .../ऐ तेरे ताईं बनियां बो ! !!

स्वतंत्रता की लहर ने जब ज़ोर पकड़ा तो अंग्रेजों ने चारों ओर आतंकित एवं भया वह वातावरण पैदा कर दिया था। इसी दृश्य का अनूठा चित्रण किया गया है :- 'स्वतंत्रता की बलिवेदी पर असंख्य दीपक जल कर बुझ गए। जो पीछे रह गए उन्हें बिच्छोह का दुःख तपा रहा है। वे केवल गतिवान मृत शरीर की तरह ही हैं। तरुरियों के सिंदूर सदा के लिए मिट गए हैं, माताओं की झुरियां अब वे सहारा हो गई हैं, फिरंगी के डर से सब द्वार बन्द थे।

उस पिण्डे दे कितने दिए,/आजादी दी शमा पर जली गए।...

मड़ियां साई उल्लू बोलदे,/डर फिरंगियां, सब दर बन्द थे।

उन की कविता 'सेत खुली गया' प्रेम परक है तथा 'पहाड़ियां दी मारी गई मत लोको, उजड़ी कांगड़ा देस जाणा' में कांगड़ा बासियों को चेतावनी देते हुए उद्‌बोधन दिया है।

अद्यावधि यत्र-तत्र पठित गांधी बाबा कांशीराम जी के साहित्य को पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अज्ञेय जिस प्रयोग वादी कविता के कर्णधार माने जाते हैं उसका श्री गणेश बाबा ने वर्षो पहले अपनी कविताओं में कर दिया था। इनकी जेल विषयक वर्णनों वाली कविताओं में सहज वर्णन के साथ स्वतंत्रता के लिए व्यग्रता है तथा भारत मातृ-भक्ति की प्रमुखता भी है। कहीं वे बाबा बालक नाथ की भक्ति में झूमते हैं तो कहीं नव यौवना की रुपमाधुरी के गीत गाते हैं। इस प्रकार उनका साहित्य साहित्यिक गुणों से ओत प्रोत है।

पहाड़ी गांधी ने अपने सहित्य में कांगड़ा जन-पद की चलती-फिरती भाषा को अपनाया है। पंजाबी, उर्दू का मिश्रण तो स्वाभाविक ही है। इन की भाषा जन सामान्य की पहुंच से परे न हो कर सरल,सुबोध परन्तु आवगांमीर्य से युक्त कहीं-कहीं रसिक जन गम्य 'कांगड़ी-पहाड़ी-माषा है। ये सचमुच ही पहाड़ी थे, इन्होंने पहाड़ और पहाड़ी को स्वनाम से सार्थक किया है :-

पहाड़ी था, इरादा तेरा पहाड़ था,/पहाड़िया पहाड़ां दा, पहाड़ बणी

पहाड़िया च,पहाड़ियां दे दिला मझां/जादिया री जोतवाली, गांधी गीतां गांदारिया।

कासिया दा सिव बावा धुणियां रमां दा रिया॥

ग्राम रंघाड़ पो. फतेहपुर-177 042

जिला हमीरपुर (हि. प्र.)

H.A.A.C.L.

पञ्जी संख्या 28271/75

सचिव, हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी, क्लिफ़ एण्ड एस्टेट शिमला
द्वारा प्रकाशित तथा मुनीश प्रिंटर्ज टूटू, शिमला-171 011 में मुद्रित।